ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर

राष्ट्रीय जीवन-चरित माला

ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर

कर्त्तार सिंह दुग्गल

अनुवादक

बालकराम नागर

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

पहला संस्करण 1985 (शक 1906)
तीसरी आवृत्ति 1990 (शक 1912)

रु. 16.00
Giani Gurmukh Singh Musafir (*Hindi*)
निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित।

आमुख

संसार में हर बड़े आदमी की जीवनी आनेवाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत होती है। बड़े आदमी अच्छे भी होते हैं, बड़े आदमी बुरे भी होते हैं। केवल बड़ा होना ही अच्छा होना नहीं होता।

ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर उन हस्तियों में से हैं, जिनमें केवल बड़ाई ही बड़ाई है। उनका आकर्षक व्यक्तित्व ईश्वरीय देन थी। उनका निर्मल स्वभाव, देश-प्रेम, साहित्य-अनुराग, कुछ ऐसे गुण हैं, जो पहली ही मुलाकात में दूसरे को मोह लेते थे। उनकी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक सूझ-बूझ हर श्रेणी और हर विचारधारा के लोगों को प्रेरित करती थी, अपना दीवाना बना लेती थी।

मैंने अपनी जिंदगी में कभी उन्हें थका हुआ, ऊबा हुआ या चिढ़ा हुआ नहीं देखा। खबरें अच्छी भी आतीं, बुरी खबरें भी आतीं, खुशी भी होती, गम भी होते, लेकिन "मुसाफिर" हमेशा एक जैसे हंसमुख और प्रसन्न रहने वाले खूबसूरत इंसान थे।

ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर की ज़िंदगी के कई पहलू हैं, जिन पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। मैं आशा करता हूं, आनेवाले समय में उनके जीवन के बारे में और विस्तार से लिखा जायेगा।

सरदार कर्त्तार सिंह दुग्गल ने, जो एक चोटी के लेखक और विचारक हैं, यह पुस्तक लिखकर एक विशेष कर्तव्य निभाया है। प्यारे और माननीय "मुसाफिर" की ज़िंदगी से देश की नई नस्ल को परिचित कराया है। सरदार कर्त्तार सिंह दुग्गल हमारे अग्रणी लेखकों में से तो हैं ही, साथ ही उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया है कि वे एक श्रेष्ठ मित्र भी हैं। मैं धन्यवाद देता हूं सरदार दुग्गल को।

वर्ष 1985।

ज्ञानी जैलसिंह
राष्ट्रपति, भारत सरकार

दो शब्द

अपने जीवन में मैंने ढेर सारी किताबें लिखी हैं, लेकिन इस छोटी-सी पुस्तक की रचना करके मुझे खास खुशी हो रही है। जैसे किसी ने अपना ऋण चुका दिया हो।

ज्ञानी गुरुमुख सिंह "मुसाफिर" को मेरे साहित्यिक विवेक पर पूरी निष्ठा थी। पिछले दिनों तो जब कभी कोई रचना वे प्रकाशित करते, उनकी इच्छा होती कि उसके संबंध में कुछ न कुछ भूमिका के रूप में मैं लिखूं। जहां तक संभव होता मैं ऐसा करता; ऐसा करके खुशी प्राप्त करता। ऐसा करते हुए मेरी ज्यादा दिलचस्पी यही होती कि ज्ञानी जी का राजनीतिक स्वरूप कहीं उनके साहित्यकार के बिंब को धूमिल न कर रहा हो। अगर ऐसा हुआ तो यह उनके साथ अन्याय होगा। यह मेरी धारणा रही है।

मृत्यु से कुछ मास पूर्व उन्होंने अपनी अप्रकाशित कहानियों तथा अपनी अप्रकाशित कविताओं का एक-एक संग्रह तैयार किया, और दोनों पांडुलिपियां मेरे पास छोड़ गए। उनका कहानी-संग्रह 'उखार पार' तो हमने उनके जीवनकाल में छपवा लिया, लेकिन कविता संग्रह "दूर नेड़े" छपने तक उन्होंने प्रतीक्षा नहीं की। "दूर नेड़े" अब उनके मरणोपरांत नवयुग द्वारा अब प्रकाशित हुआ है।

इस पुस्तक के लिए ज्ञानी जी की रचनाओं का चयन करते समय मेरी कोशिश यही थी कि ज्यादातर ऐसी चीजें शामिल की जाएं, जिनमें उनकी निजी जिंदगी की झलक मिलती हो। इस तरह यह भाग, एक प्रकार से उनकी जीवन-गाथा का एक पूरक कहा जा सकता है।

ज्ञानी गुरुमुख सिंह "मुसाफिर" से मैं पहली बार 1940 ई० में मिला था। तब से निरन्तर उनके प्यार की स्निग्धता मुझे मिलती रही। ज्ञानी जी एक बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी थे। उनकी जीवनी और अधिक खोज-बीन तथा और अधिक विस्तार से लिखी जानी चाहिए। यह काम मैं तब तक के लिए आगे डाल रहा हूं, जब मैं सोचता हूं, मेरे पास, कुछ और ज्यादा फुरसत होगी।

मैं हमेशा ज्ञानी जी को उकसाता रहा कि वे अपनी आत्म-कथा लिख डालें। अपने जीवन की कहानी लिखना शुरू कर भी दिया था उन्होंने, मगर पूरा नहीं कर सके उसे। उनकी राजनीतिक गतिविधियां ही कुछ इस प्रकार की थीं।

इस पुस्तक में इस्तेमाल की गई तसवीरों के लिए मैं ज्ञानी जी की सुपुत्री श्रीमती जोगिन्दर संत का आभारी हूं। गुरमुख सिंह 'मुसाफिर' मेमोरियल ट्रस्ट के सेक्रेटरी सरदार मुबारक सिंह ने कुछ चित्र और ब्लाक हमें छापने के लिए दिए, जिनके लिए उनका भी बहुत-बहुत धन्यवाद।

पी-7, हौजखास,
नई दिल्ली-110016

कर्त्तार सिंह दुग्गल

विषय-सूची

चित्र-क्रम

ज्ञानी गुरमुख सिंह "मुसाफिर"

ज्ञानी गुरमुख सिंह "मुसाफिर", जिन्हें छोटे, बड़े सब प्यार से, "ज्ञानी जी" या "मुसाफिर जी" कह कर बुलाते थे, रविवार, 18 जनवरी 1976 को हमारे बीच नहीं रहे। एक अग्रणी राजनीतिज्ञ, जो कई वर्ष तक पंजाब प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष रहे, पंजाब सरकार के मुख्य-मंत्री बने, स्वतंत्र भारत में लोक सभा के बहुत समय तक सदस्य चुने जाते रहे। अपने अंतिम श्वास तक सृजनात्मक लेखक वे पहले थे, और कुछ बाद में। मृत्यु से कुछ दिन पूर्व, दूरदर्शन पर एक भेंट-वार्ता में मुझसे बातचीत करते हुए उन्होंने कहा था—

"राजनीतिज्ञ मैं हूं नहीं। देश में हालात कुछ ऐसे थे कि जिन दिनों मुझ में कुछ करने की हिम्मत थी, राजनीतिक गतिविधियां बड़े जोरों पर थीं। परिस्थितियों ने मुझे राजनीति में कूद पड़ने पर विवश कर दिया। वैसे मेरी रुचि साहित्य में है। कविता और कहानी लिखने में, मैं ज्यादा खुशी अनुभव करता हूं, विशेषकर आजकल। जेल की जिंदगी अगर राजनीतिक गतिविधियों में गिनी जाए, तो इस राजनीति ने मेरी साहित्यिक प्रतिभा निखारने में, मेरी मदद की है। राजनीतिक जिम्मेदारियों ने रुकावट डाली है, "लीडरी दी फिक" शीर्षक कविता में मैंने लिखा है।"

काव दे आकाश दी जे शुद्ध हवा तू माणनी
तां लीडर दे टोईयां दी छोड़ मिट्टी छाणनी

(जो तुम कविता के आकाश की शुद्ध हवा का आनन्द लेना चाहते हो तो राजनीति की धूल फांकना छोड़ दो।)

एक और प्रमाण भी है। राजनीतिक गुत्थी सुलझानी पड़ जाए तो मैं उकताहट महसूस करता हूं। लिखने पर आ जाऊं तो चाहे सारी रात गुजर जाए, थकावट महसूस नहीं करता।"

वे इतनी जल्दी, इस तरह चुपके से चले जाएंगे, किसी को गुमान तक नहीं था। वर्तमान राष्ट्रपति, ज्ञानी जैलसिंह, जो तब पंजाब के मुख्य मंत्री थे; तथा कुछ अन्य मित्रों ने रात का खाना उनके साथ सर सोभासिंह के यहां खाया। आधी रात को उन्हें बड़े जोर का दिल का दौरा पड़ा। डाक्टर दौड़े आये। लेकिन उनके जाने

का समय आ चुका था । ज्ञानी जी स्वयं इस आकस्मिक अंत के लिए तैयार नहीं थे । इसका प्रमाण उनके कविता-संग्रह 'दूर नेड़े'[1] की भूमिका में मिलता है जो अपनी मृत्यु से दो-चार दिन पूर्व ही उन्होंने लिखी थी ।

"उपर्युक्त शीर्षक की मेरी कविताओं की पुस्तक काफी समय के अन्तराल के बाद छप रही है, लेकिन इसे मेरी अंतिम पुस्तक नहीं समझा जाना चाहिए । यह मेरा अनुमान है । इस किताब में छपी एक ग़ज़ल का मकता है ।

हुन मसां किधरे असानूं आई है जीवन दी जाच
आपणी इह कलपना है, वैसे कुझ इतबार नहीं ।

(अब मुश्किल से कहीं जीने का सलीका आया है मुझे । कल्पना कहूंगा इसे मैं अपनी, यकीन तो नहीं है वैसे ।)

यदि जीने का ही ढंग अब आया है तो समझा जा सकता है कि लिखने पढ़ने का तरीका भी अभी आया है । फारसी की कहावत है "पीर शो बिआमोज़" बुढ़ापा आने पर भी सीखते जाओ। सीखने के लिए उम्र की कोई कैद नहीं । सच तो यह है कि सीखने की मेरी ललक मिटी नहीं बल्कि और भी विकसित होती जा रही है ।"

मैंने अभी कहा कि ज्ञानी जी इस आकस्मिक अंत के लिए तैयार नहीं थे । शायद मैं गलत हो सकता हूं । इसलिए कि उन्होंने यह क्यों कहा था—"आपनी इह कलपना है, वैसे कुछ इतबार नहीं" यही नहीं, अपनी अन्तिम कविता में जो अधूरी ही रह गई, वे कहते हैं :

पक्की उमरे
होर भी उलटे
पक्कदे जाण
विचार :
रब्ब ना करे
जे मैं ना रिहा
जाणं डुब्ब संसार । **(दुनीं सुहावा बाग़)**

(पक्की उम्र में, एक परिवर्तन अनुभव करता हूं अपनी सोच में । ईश्वर न करे, मैं न रहा अगर, तो एक प्रलय टूट पड़ेगी ।)

ज्ञानी जी को मालूम था कि उनका शरीर जवाब देता जा रहा है । कुछ दिन पहले उन्हें दिल का दौरा पड़ चुका था । कभी-कभी एक धुकधुकी सी लगी रहती

[1] दूर पास ।

थी उन्हें । इस बात का हमेशा डर बना रहता था कि अगर कहीं उनके डाक्टरों को पता चल गया तो उन्हें बिस्तर पर लिटा देंगे और पूर्ण-विश्राम का परामर्श देंगे । यह ज्ञानी जी को स्वीकार नहीं था । जब तक उनकी जान में जान थी वे लोक-सेवा और लिखने-पढ़ने में डूबे रहना चाहते थे ।

ज्ञानी गुरुमुख सिंह "मुसाफिर" का जन्म अविभाजित पंजाब के कैंबलपुर जिले के अधवाल गांव में हुआ-पोठोहार की उस धरती पर, जिसे उनकी पीढ़ी के भाई जोधसिंह, प्रिंसिपल तेजासिंह, प्रोफेसर मोहनसिंह जैसे अनेक साहित्यकारों पर गर्व है । उनके पिता सरदार सुजानसिंह एक धर्मात्मा पुरुष थे । थोड़ी-बहुत खेती बाड़ी भी करते थे । बचपन में जब भी फुरसत मिलती ज्ञानी जी उनकी मदद करते । उनकी प्रारंभिक शिक्षा गांव के डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड स्कूल में हुई । फिर जे० वी० की परीक्षा पास करके वे प्राथमिक कक्षाओं को पढ़ाने के सुयोग्य समझे जाने लगे । कुछ दिनों बाद ज्ञानी हीरा सिंह 'दर्द', एक अन्य प्रमुख पंजाबी कवि के साथ उन्होंने पोठोहार के गांव कल्लर में स्कूल मास्टरी शुरू कर दी । तब ज्ञानी जी की आयु केवल 19 वर्ष की थी । इस स्कूल के हैडमास्टर प्रसिद्ध अकाली नेता मास्टर तारा सिंह थे । स्कूल की नौकरी के कुछ दिन बाद, ज्ञानी जी के आत्म सम्मान ने उन्हें यह फैसला करने पर मजबूर किया कि वे ऊंची पढ़ाई करके अपनी शैक्षिक योग्यता को बढ़ाएंगे । इस संबंध में एक मनोरंजक घटना स्वयं ज्ञानी जी ने मुझे सुनाई थी :

इस स्कूल में भरती होने के बाद ज्ञानी जी से कहा गया कि वे कच्ची-पहली कक्षा को पढ़ाएं । युवा 'मुसाफिर' को यह मंजूर नहीं था । अपनी योग्यता के बारे में उनकी निजी राय इससे बेहतर थी । "तो फिर आप हैडमास्टरी संभाल लें," यह जान कर मास्टर तारासिंह ने व्यंग्य किया । मास्टर जी ने जब यह कहा तो उस समय उनके कमरे में ज्ञानी हीरासिंह 'दर्द' भी थे । बाहर आकर दोनों ने फैसला किया कि अपनी योग्यता को बढ़ाने के लिए वे उच्च शिक्षा प्राप्त करेंगे । यह तो संभव था नहीं कि अपनी नौकरी छोड़ कर कालेज में दाखिला ले लें । इसलिए यह तय पाया कि पहले वे ज्ञानी की परीक्षा पास करेंगे, और फिर बी० ए० के लिए प्राइवेट तौर पर बैठेंगे । ऐसा ही उन्होंने किया । ज्ञानी पास करके वे 'ज्ञानी' के नाम से बुलाये जाने लगे । फिर जब बाकायदा तौर पर उन्होंने कविता करना शुरू कर दिया तब ज्ञानी गुरुमुख सिंह तो 'मुसाफिर' नाम से जाने जाने लगे । और ज्ञानी हीरासिंह ने उपनाम 'दर्द' अपना लिया ।

ऐसा लगता है "मुसाफिर" जी जैसे कोमल-हृदय कलाकार तथा असाधारण प्रतिभा के नवयुवक का दूर, अलग-थलग पड़े एक गांव में ज्यादा देर टिके रहना संभव नहीं था । 1919 में जलियांवाला बाग कांड ने उन्हें जैसे झकझोर कर रख दिया । उनकी अंतरात्मा ने जैसे विद्रोह कर दिया हो । अपना देश जब विदेशी शासन की

बेड़ियों से मुक्त होने के लिए जूझ रहा था, तो वे एक कोने में पड़े किसी गांव में बच्चों को पढ़ा कर कैसे संतुष्ट रह सकते थे ? और फिर तीन साल बाद 1922 में जब ठीक जलियांवाला बाग जैसा कांड ननकाना-साहब में भी हुआ तो ज्ञानी जी कमरकस कर, देश की आजादी की लड़ाई में कूद पड़े । ननकाना साहब में, फिरंगी की शह पर कोई दो सौ सिखों को शहीद कर दिया गया था । गुरुनानक के श्रद्धालुओं को जिंदा जला दिया गया था ।

पंजाब के अधिकांश सिख नेताओं की तरह ज्ञानी जी भी राष्ट्रीय राजनीति में अकाली आंदोलन की मार्फत आए । अकाली आंदोलन में ही ज्ञानी जी पहली बार नजरबंद किए गये । और फिर देश के स्वतंत्रता-संग्राम में, इस तरह की जेल यात्राओं का जैसे एक अटूट क्रम शुरू हो गया । 1930 में वे अकाल तख्त के जत्थेदार चुने गये । सिख पंथ में इससे ऊंची कोई पदवी नहीं । फिर कुछ दिनों के लिए वे सिख गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के सैक्रेटरी भी रहे । मास्टर तारासिंह के अलावा जिन अग्रणी सिख नेताओं के साथ कंधे से कंधा मिलाकर ज्ञानी जी ने आजादी की लड़ाई में भाग लिया, उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं : बाबा खड़गसिंह, ईशर सिंह "मझैल," अमरसिंह "झब्बाल", जत्थेदार मोहन सिंह, प्रताप सिंह "कैरों", मोहन सिंह "जोश" दर्शनसिंह 'फेरूमान', ऊधमसिंह 'नागोके', गोपालसिंह 'कौमी', तेजासिंह 'स्वतंत्र' और मास्टर महताबसिंह ।

बलिदान की भावना से ओत-प्रोत, दृढ संकल्पी ज्ञानी गुरुमुखसिंह 'मुसाफिर' इस बात के लिए कभी तैयार नहीं हुए कि जेल में बन्द होने के दौरान वे पैरोल पर बाहर आ जाएं, चाहे उनकी जेल यात्रा के दिनों में उनका पांच बरस का बच्चा जाता रहा, एक बेटी चल बसी, और फिर उनके पिता उनकी राह देखते-देखते स्वर्ग सिधार गए । उनके वृद्ध पिता हमेशा उनसे कहा करते थे "यार ! कब खिसकेंगे ये अंग्रेज यहां से ?" कि फिरंगी कब हमारे देश से जायेगा ताकि उनका बेटा उनके पास रह सके । एक के बाद एक, उनकी जेल यात्राओं का सिलसिला जब चल रहा था, तो अत्यंत अभावों और गरीबी में उनकी पत्नी बच्चों को पालती रही, पर क्या मजाल जो कभी कोई शिकायत की हो । उन दिनों कोई न कोई आन्दोलन चलता ही रहता था । जो भी आन्दोलन शुरू किया जाता ज्ञानी जी की धर-पकड़ हो कर रहती ।

महात्मा गांधी की उन पर बड़ी आस्था थी । बापू प्राय: उन्हें परामर्श के लिए बुलाते, विशेषकर पंजाब की समस्याओं के बारे में । बरसों कांग्रेस हाई कमान के सदस्य रहने के कारण, वे जवाहर लाल नेहरू के भी बहुत निकट थे । नेहरू के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी । जवाहर लाल भी ज्ञानी जी की बड़ी कद्र करते थे । ज्ञानी जी ने महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू की अपनी स्मृतियों को दो पुस्तकों

में संजोया है। ये हैं—वैंखिआ सुणिआं गांधी (देखा सुना गांधी) और वेखिआ सुणिआं नेहरू (देखा सुना नेहरू)।

जेल यात्रा के दौरान, अन्य राजनीतिक नेताओं की तरह वे किताबें पढ़ते या कविता-कहानी आदि लिखते। इन्हीं दिनों उन्होंने गांधी-गीता और बाईवेज आफ बलैसडनैस नामक पुस्तकों का पंजाबी में अनुवाद किया।

देश के स्वतंत्र होने पर ज्ञानी जी को दिल्ली में देश की संविधान सभा का सदस्य बनाया गया। उसके बाद वे संसद के सदस्य चुने गये। कुछ महीनें छोड़कर, जब कि वे पंजाब के मुख्य मंत्री थे, ज्ञानी जी लगातार संसद-सदस्य निर्वाचित होते रहे। राजनीतिक नेता के रूप में 1952 के चुनाव में, अपने दल की पंजाब में जीत का श्रेय केवल उन्हीं को जाता है। एक राजनीतिज्ञ के रूप में इस जीत ने उनकी साख को और भी बढ़ाया।

लेकिन जिस बात के लिए पंजाबियों की कई पीढ़ियां ज्ञानी जी को याद करेंगी, वह है देश के बंटवारे के कारण लुटे-पिटे शरणार्थियों के पुनर्वास में उनका योगदान। चाहे कोई पश्चिमी पंजाब से आया था या उत्तर पश्चिमी सीमा-प्रांत से या फिर सिंध से, ज्ञानी जी ने हर किसी की तन-मन से सहायता की। ज्ञानी जी के निवास स्थान, 21 फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली पर शरणार्थियों की बाढ़-सी आई रहती। विस्थापितों के प्रति उनकी व्यग्रता और करुणाभाव को देख-देख कर मैं चकित होता रहता। जिनका कोई मददगार नहीं था वे सहायता के लिए ज्ञानी जी के पास आते। और क्या मजाल जो कोई कभी निराश लौटा हो, खाली हाथ लौटा हो।

देश की आजादी के बाद कितने ही वर्ष ज्ञानी जी पंजाब के राजनीतिक आकाश पर उज्जवल नक्षत्र की तरह चमकते रहे। कई बार पंजाब प्रदेश कांग्रेस के वे निर्विरोध अध्यक्ष चुने गये। और इस प्रकार पंजाब को उन्होंने एक स्थिर नेतृत्व प्रदान किया। लाला लाजपतराय के बाद, कहा जा सकता है, कि ज्ञानी गुरुमुख सिंह 'मुसाफिर' अपने समय में पजाब के एकाकी नेता थे, जिन्हें राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक नेता के रूप में माना गया।

चाहे मन से वे कट्टर कांग्रेसी थे (कांग्रेस पार्टी में वे 1922 में शामिल हुए) लेकिन यह बात नहीं कि अन्य दलों के व्यक्तियों के साथ उनकी मित्रता नहीं थी। उनके दोस्त अकाली भी थे और कम्युनिस्ट भी। कई प्रगतिशील लेखकों से उनकी गहरी मित्रता थी। इनमें फैज और अली सरदार जाफरी, मोहनसिंह और सन्त सिंह सेखों, मुल्कराज आनन्द और सज्जाद ज़हीर, बलराज साहनी और भीष्म साहनी शामिल हैं। अन्तर्राष्ट्रीय शांति सम्मेलन और प्रगतिशील लेखकों की विश्व-स्तरीय सभाओं में वे एक से अधिक बार सम्मिलित हुए।

सैर-सपाटे के इच्छुक, ज्ञानी जी काफी दुनिया घूमे थे। विश्व के कोने-कोने

में उनके प्रशंसक और उनसे परिचय रखने वाले मौजूद हैं। इनमें लेखक भी हैं और कलाकार भी, बूढ़े भी हैं और जवान भी। वे ताश खेलने के बड़े शौकीन थे। जहां तक संभव हो पाता, शाम को क्लब में वे ज़रूर जाते। एक बार मैं उनके यहां ठहरा हुआ था। मेरी आदत है कि भोर होने से पहले मैं उठ जाता हूं। उस दिन सुबह जब मैं मुंह-अंधेरे उठा तो मैंने देखा, ज्ञानी जी अपने जूतों के तसमें खोल रहे थे। "आप सैर करके लौट भी आए ?" यह कहते हुए मैं गुसलखाने में चला गया। उस दिन, सुबह नाश्ते की मेज पर बैठे हुए ज्ञानी जी ने चुपके से मेरे कान में कहा, "तब मैं क्लब से ताश खेलकर लौटा था," मैं उनके मुंह की ओर देखता रह गया।

ज्ञानी गुरुमुख सिंह 'मुसाफिर' का राजनीतिक जीवन-काल भारत के इतिहास में बड़ा कठिन दौर था। पहले आज़ादी के लिए संघर्ष, फिर देश का बंटवारा, शरणार्थियों का पुनर्वास और फिर नये भारत की सुदृढ़ नींव रखना। हर दौर में, हर चुनौती में, ज्ञानी जी सदा आगे रहे। अपने चेहरे पर कभी उन्होंने उकताहट या घबराहट नहीं आने दी। हर जिम्मेदारी को हंसते-खेलते निभाते गये। कभी किसी ने उनको नाराज होते नहीं देखा, उतावले होते नहीं देखा। कोई खीझ नहीं, किसी से कोई गिला या शिकायत नहीं। कोई भी, किसी भी समय, किसी तरह की समस्या लेकर उनके घर जा सकता था। एक बार श्री अजीत प्रसाद ने, जो उन दिनों केन्द्रीय सरकार में पुनर्वास विभाग के मंत्री थे, ज्ञानी जी को एक फ्लैट आवंटित करने की इच्छा प्रकट की। "बस यह आखिरी फ्लैट है दिल्ली में, खास तौर पर आपके लिए मैंने बचा कर रखा हुआ है," मंत्री ने कहा। उस दिन, घर लौटने पर ज्ञानी जी अपनी पत्नी से इस बारे में बात कर रहे थे कि उनकी जान-पहचान का कोई शरणार्थी भी उस समय उनके पास बैठा सुन रहा था। अगले दिन वह अजीतप्रसाद के नाम, ज्ञानी जी की ओर से एक पत्र टाइप कराकर ले आया जिसमें लिखा था--"जो फ्लैट आपने मुझे देने की इच्छा प्रकट की थी उसे इस व्यक्ति को, जो आपके पास यह चिट्ठी ला रहा है, आवंटित कर दें।" ज्ञानी जी ने बिना देखे पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। अजीत प्रसाद ने जब चिट्ठी पढ़ी तो अवाक रह गये। जिन दिनों मैं नेशनल बुक ट्रस्ट का निदेशक था, ट्रस्ट में कोई जगह खाली हुई। इस नौकरी के लिए जो आवेदन पत्र आए उनमें तीन प्रार्थियों के लिए ज्ञानी जी ने सिफारिश की थी। यह देख कर मुझे बड़ी हँसी आई। ज्ञानी जी को टेलीफोन पर मैंने कहा कि हमारे पास जगह एक उम्मीदवार की है और आपने तीन के बारे में सिफारिश कर रखी है। मेरी बात सुन कर कहने लगे, "मैंने अपना काम किया है, आप जैसा उचित समझते हैं, अपना काम करें।" और हँस कर उन्होंने मेरी दुविधा का हल निकाल दिया।

एक राजनीतिक नेता के रूप में निःसन्देह उनकी देन महत्वपूर्ण है, लेकिन

ज्ञानी गुरुमुख सिंह 'मुसाफिर' ने एक लेखक के रूप में भी पंजाबी साहित्य में अपनी अलग जगह बना ली है। कवि और कहानी लेखक की हैसियत से उन्हें चिरकाल तक याद किया जाता रहेगा। अपना साहित्यिक जीवन उन्होने एक कवि के रूप में आरंभ किया, लेकिन फिर एक समय आया जब कहानियां लिखना उन्हें ज्यादा पसंद आने लगा। उनके नौ कहानी संग्रह हैं—वक्खरी दुनिया, (अलग दुनिया) आल्लणे दे बोट, (नीड के नवजात शिशु) कंधा बोल पईआं (और दीवारें बोल पड़ी); सत्ताई जनवरी (सत्ताईस जनवरी), अल्लावाले (अल्लाह के बन्दे); गुटार, सब इच्छा (सब ठीक है)' सस्ता तमाशा और उरवार पार (आर-पार)। इसी प्रकार नौ ही उनके कविता संग्रह थे सबर दे बाण (सब्र के वाण); प्रेम बान, जीवन पंथ (जीवन पंथ); मुसाफरियां (मुसाफिर का चिन्तन), टूट्टे खंभ (टूटे पंख), काव-सुनेहे (काव्य-संदेश) सहिज-सेती, वक्खरा वक्खरा कतरा कतरा (अलग-अलग), बूंद-बूंद, और दूर-नेड़े (दूर-पास)।

इसके अलावा उनकी कुछ अन्य सुपरिचित रचनाएं हैं—वेखिआ सुणिआ गांधी, (देखा सुना गांधी), वेखिआ सुणिआ नेहरू (देखा सुना नेहरू), बागी जरनैल (विद्रोही सेनापति)। उनके द्वारा अनूदित सामग्री में गांधी-गीता और आनन्द मार्ग अधिक प्रसिद्ध हैं।

एक और बड़ा काम जो ज्ञानी जी ने बिना किसी बाहरी सहायता के अपने हाथों में लिया—वह था देश के स्वतंत्रता संग्राम में बीसवीं सदी के शहीदों का जीवन-वृत्तांत। इसका पहला खंड 1968 में प्रकाशित हुआ। बाकी सामग्री को पंजाबी विश्वविद्यालय प्रकाशित कर रहा है।

इसके अलावा उन्होंने अपनी आत्मकथा लिखनी शुरू की थी। जो पूरी नहीं हो सकी और अभी तक अप्रकाशित पड़ी है।

सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से ज्ञानी जी की डायरियां अधिक महत्वपूर्ण हैं जिन्हें प्रकाशित करना अभी उचित नहीं समझा गया। कई वर्ष तक नियमित रूप से ज्ञानी जी अपनी डायरी लिखते रहे। पहले उर्दू में लिखते थे, फिर पंजाबी में लिखना शुरू कर दिया। इन रोज़नामचों में उन्होंने अपने समकालीनों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। पिछले कई वर्षों की गतिविधियों के बारे में इन डायरियों में अमूल्य जानकारी भरी पड़ी है। जब कोई लेखक ज्ञानी गुरुमुख जैसा ईमानदार इंसान हो तो इस तरह की सामग्री का मूल्य और भी बढ़ जाता है। ज्ञानी जी का जीवन काल हमारे इतिहास में एक कड़े संघर्ष का समय था। इस तरह के दौर के बारे में एक कोमल हृदय कलाकार की प्रतिक्रिया इतिहासकारों के लिए जानकारी की खान सिद्ध होगी। अब इन डायरियों को नेहरू मैमोरियल ट्रस्ट की लायब्रेरी में सुरक्षित रखा जा रहा है।

ज्ञानी गुरुमुखसिंह 'मुसाफिर' की साहित्यिक देन का मूल्यांकन उनकी मृत्यु के बाद इतनी जल्दी करना शायद ठीक नहीं होगा। ज्ञानी जी के बारे में यह और भी कठिन है क्योंकि उनके राजनीतिक व्यक्तित्व की प्रतिच्छाया उनके भीतर के लेखक के जीवन पर अभी तक काफी गाढ़ी है।

कई बार उनके प्रशंसकों को विश्वास न होता हो कि एक दशक से ज्यादा समय तक पंजाब कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर आरूढ़ व्यक्ति अपनी भाषा का प्रमुख कवि और कहानीकार भी हो सकता था और कि वह अपनी सुबहें जवाहर लाल नेहरू के साथ मिल कर देश की जटिल समस्याओं को सुलझाने में गुजारता, और शामें हज़ारासिंह 'मुश्ताक' और तारासिंह 'कामिल' जैसे कवियों के साथ कवि-सम्मेलनो में।

यही कारण था कि ज्ञानी जी को जब भी कोई कहानी-संग्रह प्रकाशित करना होता उसके बारे में दो-चार शब्द मैं जरूर लिखता ताकि इस तथ्य को उभारा जा सके कि ज्ञानी गुरुमुखसिंह 'मुसाफिर' चाहे प्रमुख राजनीतिक नेता थे लेकिन उसके साथ-साथ वे एक साहित्यकार भी थे। उनके मरणोपरांत जब उनके कहानी-संग्रह "उरवार परवार" को साहित्य अकादमी का पुरस्कार दिया गया तो मुझे ऐसा लगा जैसे ज्ञानी जी के बारे में मेरे सारे दावे गलत नहीं थे। इसी प्रकार ज्ञानी जी की कहानियों के बारे में बार-बार लिखने का एक और भी कारण था। वास्तव में एक निजी कारण था। कई वर्ष पूर्व लाहौर में जब ज्ञानी जी ने अपना पहला कहानी संग्रह प्रकाशित करने का फैसला किया, तो उनके मित्र एवं प्रकाशक सरदार मुबारक सिंह ने अनुरोध किया कि मैं उस संग्रह के बारे में कुछ शब्द भूमिका के तौर पर लिखूँ। यह सोच कर कि लघु-कथा एक उन्नत कला शैली है, जो फलागें भरती कहां से कहां जा पहुंची है, उसे एक राजनीतिक नेता कैसे अपना सकता है, मैंने सरदार मुबारकसिंह को टाल दिया।

पर जब 'वक्खरी दुनिया,' ज्ञानी गुरुमुखसिंह 'मुसाफिर' का यह कहानी-संग्रह छप के आया तो मुझे बहुत ज्यादा शर्म महसूस हुई। इस संग्रह की कहानियां हर पक्ष से सफल थीं। ज्ञानी जी का लिखने का ढंग नवीनतम था और जो कुछ वे कह रहे थे वह सचमुच मौलिक था। इन कहानियों मे जेल के जीवन का उस तरह का रोचक वर्णन केवल ज्ञानी जी ही कर सकते थे। एक और तो जेल-अधिकारियों की निर्ममता तथा अत्याचार, और दूसरी ओर देश-भक्तों का बेजोड़ साहस और बलिदान। ये कहानियां हमारे साहित्य में एक अलग स्थान रखती हैं। इसी तरह 'आल्हणे दे बोट' जैसी कहानियों में जेलों में सड़ रहे देशभक्तों के घरों में, उनकी अनुपस्थिति में उनके परिवार पर टूटी पड़ रही मुसीबतो का हृदय विदारक चित्रण है। ज्ञानी जी के अपने परिवार के एक से ज्यादा सदस्य उनकी जेल यात्रा के दौरान

काल का ग्रास हो गए। उनकी जवान-जहान बेटी गंभीर रूप से बीमार थी पर उसने यह कभी नही चाहा कि उसके पिता फिरंगी सरकार से आज्ञा लेकर उससे मिलने के लिए जेल से बाहर आएं। आत्म-सम्मान की प्रतिमूर्ति यह लड़की अपने प्यारे पिता का मुंह देखे बिना इस दुनिया से चल बसी।

ज्ञानी गुरुमुखसिंह 'मुसाफिर' एक लोक-प्रिय नेता थे। अपने आस-पास का उन्हें गहरा अनुभव था। एक साहित्यकार होने के नाते उनकी सदा यह कोशिश रहती कि नवीन साहित्यिक अभिरुचि के साथ कदम मिला कर चलें। वे कई प्रगतिशील और नये लेखकों के निजी दोस्त थे चाहे वह मोहनसिंह रहे हों, चाहे शिव कुमार बटालवी, चाहे गुरु बख्शसिंह या फिर उपन्यासकार नानकसिंह।

जब भाई साहब भाई वीरसिंह जी का दाह-संस्कार हुआ, ज्ञानी जी स्वयं वहां उपस्थित थे। "ऐसा लगता था जैसे फूलों को दोनों बाजुओं में समेट कर भर कर कोई अग्नि के हवाले कर रहा हो।" ज्ञानीजी ने मुझे बताया। उन जैसे कोमल-हृदय व्यक्ति पर इस घटना का बहुत गहरा प्रभाव हुआ प्रतीत होता था। 'मुसाफिर' के भीतर का कहानीकार हर किसी से पूरा न्याय करता था चाहे कहानी किसान की हो, चाहे किसी मजदूर की, चाहे सड़क पर दिखाई दिए किसी विकलांग की हो, चाहे उनसे मिलने के लिए आए हुए किसी शरणार्थी की। चाहे किसी निर्धन की हो, चाहे किसी बिगड़े रईस की। उनकी कहानियों में प्रायः लोक-कथाओं की सादगी दिखाई देती है। ऐसा लगता है जैसे शुरू में ही वे सारी कहानी खोल दे रहे हों। फिर भी कहानी के दौरान वे पाठक की दिलचस्पी को बनाए रखते हैं। इसका रहस्य उनके संरचना-शिल्प की सहजता और उनके कथन की ईमानदारी में निहित है। यही कुछ तो हीर-वारिसशाह में देखने को आता है, और ठीक यही कुछ प्रसिद्ध जर्मन नाटककार बेरेख्ट कर रहा प्रतीत होता है।

ज्ञानी जी कहानी या कविता की विधा में इस तरह के प्रयोग कर सकते थे क्योंकि इससे पहले वे कविता और कहानी की परम्परागत विधाओं में अच्छी निपुणता प्राप्त कर चुके थे। पहले विधा के अनुशासन को उन्होंने अपनाया, फिर उस पर प्रयोग किए, और इन प्रयोगों में उन्होंने सराहनीय सफलता प्राप्त की। कहानी की विधा में उनकी अन्य विशेषता है वह आत्मनियंत्रण जिससे वे अपनी बात कहते है। किसी बात के विस्तार में जाते हुए ऐसा प्रतीत नहीं होने देते जैसे उसे तूल दे रहे हों। जहां एक चोट काफी है, क्या मजाल जो वहां दूसरी चोट करें। उनकी अभिव्यक्ति में सांकेतिकता पाई जाती है और प्रायः वे प्रतीकों का सहारा ले रहे होते हैं। उनके जीवन का अनुभव इतना व्यापक था कि प्रभावोत्पादकता के लिए परिस्थितियों के सादृश्य की कमी उन्हें कभी महसूस नहीं हुई। एक धारणा को एक से अधिक घटनाओं के द्वारा सिद्ध करने में वे अपना जोड़ नहीं रखते। उनकी

कहानी पढ़ते-पढ़ते मुझे तो कदम कदम पर कई कहानियां गर्दन उचकाती हुई दिखाई देती हैं।

एक महान कलाकार का गुण था ज्ञानी जी में, कि वे सदा अपने ऊपर हँस सकते थे। अपनी पत्नी तक को भी इस मामले में बच निकलने नहीं देते थे। उनकी सहानुभूति सदा गरीब और लाचार से होती, पीड़ित और पिछड़े-वर्ग से होती। 'खसमा खाणे' (अभिशप्त कहीं के) नामक कहानी इसका एक उदाहरण है।

शरणार्थी अपने नेता को हर तरह की समस्याओं में उलझाए रखते हैं। दिन-रात उसे चैन नहीं लेने देते। न ढंग-से खा ही सकता है, न आराम से सो पाता हैं। नेता की पत्नी परेशान है। उसका धैर्य जाता रहा है। "खसमा खाणे" "खसमा खाणे" कहती रहती है। आखिर हारकर वह गरीब शरणार्थियों को घर में नहीं घुसने देती। इसी प्रकार एक दिन वह कई शरणार्थियों को निराश वापस लौटा देती है। उस शाम कुछ धनी लोग उनके यहां आ जाते हैं। उन्हें उसके पति की सिफारिश की जरूरत है। जिस शहर में सिफारिश करवानी है, वह तो कई मील दूर है। तो फिर क्या ? उन लोगों के पास उनकी कार है। कार में बिठा कर ले जायेंगे। नेता की पत्नी को कोई आपत्ति नहीं है। पर कोई सौ मील दूर स्थित शहर में जब उनका काम बन जाता है,तो नेता के धनवान मुलाकाती उसे वहां ज्यों का त्यों छोड़ कर स्वयं किसी और काम पर निकल जाते है। बेचारा नेता रात की गाड़ी पकड़ कर अपने शहर पहुंचता है। सर्दियों के दिन है। सारी रात, किसी भारी लफड़े के अभाव में वह ठिठुरता रहता है। अगली सुबह इन अमीर लोगों के व्यवहार से विक्षुब्ध यह नेता जब अपने शहर पहुंचता है, तो रेलवे स्टेशन से बाहर क़दम रखते ही, उसे एक गरीब शरणार्थी टैक्सी ड्राइवर अपनी टैक्सी में बिठा लेता है। अपना कम्बल उसे ओढ़ने के लिए देता है और बड़े आदर और बड़े प्यार के साथ उसे उसकी कोठी पर पहुंचा आता है। जब उसकी पत्नी को इस पूरे किस्से का पता चलता है,तो वह फैसला नहीं कर पाती कि असली 'खसमा खाणे' कौन है।

ज्ञानी जी अपनी कहानियों में अपने दल की सरकार तक को माफ नहीं करते। जब भी उन्हें कहीं कोई कमी या भूल नज़र आती है, वे अपनी सरकार और अपने दल की बेधड़क खबर लेते है। 'सताई जनवरी' शीर्षक से अपनी एक प्रसिद्ध कहानी में वे दिल्ली में होने वाली गणतंत्र दिवस परेड पर एक तीखा व्यंग करते हैं।

उस वर्ष ब्रिटेन की महाराणी गणतंत्र दिवस समारोह की विशेष अतिथि थीं। जमादार झंडू और नानू अपने कई और साथियों के साथ सत्ताइस जनवरी की सुबह, गणतंत्र-दिवस-समारोह के तमाशबीनों का फैलाया हुआ कूड़ा उठा रहे हैं। गणतंत्र दिवस से एक दिन पूर्व भी सफाई करने के लिए वहां पर वे मौजूद थे। अब गणतंत्र-दिवस-समारोह के 'तमाशे' के बाद फिर हाजिर हैं,ताकि इंडियागेट के घास के

मैदानों को बुहार दें। लेकिन गणतंत्र दिवस की परेड के अवसर पर वे कहीं भी नज़र नहीं आये। परेड को देखने के लिए तो पास की जरूरत होती है, या फिर ठंड में सारी रात जागरण करना पड़ता है,ताकि ठीक-ठाक अच्छी-सी किसी जगह पर जमकर आदमी बैठ सके।

ज्ञानी जी ने अपना साहित्यिक जीवन एक कवि के रूप में शुरू किया था। आखिरी दम तक वे कविता लिखते रहे। वे अब तक एक प्रमुख कवि गिने जाते हैं। फिर एक ऐसा समय भी आया जब अपनी कहानियों को वे अधिक महत्ता देने लगे थे। कहानियां लिखने में उन्हें ज्यादा मज़ा आने लगा था। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके भीतर का कवि कहानियों में अपनी अभिव्यक्ति पाने लगा। कहीं कहीं उनकी कहानियां कविता के रंग में डूबी हुई होती हैं—एक अद्भुत बारीकी, गठन, प्रतीकात्मकता, और गीतात्मकता लिए हुए। प्रायः उनकी कहानियों में संगीत की कोई धुन गूंजती सुनाई देने लगती है, उनका कथ्य, लय में बंधा सा चलता जाता है। सरदार कर्णजीतसिंह को एक भेंट में ज्ञानी जी ने कहा था—"मैं समझता हूं, मैं कहानी में ज्यादा सफल हूं। पर कहानी में भी कविता का रंग न आये तो मेरी तसल्ली नहीं होती।"

ज्ञानी जी ने जब कहानी के क्षेत्र में प्रवेश किया, पंजाबी कहानी तब तक काफी आगे निकल चुकी थी। नानक सिंह 'ताश के पत्ते' नामक कहानी लिख चुके थे। सुजानसिंह की कहानी 'रास लीला' छप चुकी थी। गुरुबख्शसिंह की लम्बी कहानी 'अनब्याही मां' लोकप्रिय हो चुकी थी। और संतसिंह की कहानी 'पेमी दे न्याने' (पेमी के बच्चे) की चारों ओर चर्चा थी। हमारे निकट पड़ोस में कृष्ण चन्द्र और राजेन्द्रसिंह बेदी, सआदत हसन मंटो और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' धड़ा-धड़ कहानियां लिख रहे थे। 1941 में अकाली पत्रिका के संपादक के नाते 'सवेर-सार' की समीक्षा करते हुए ज्ञानी जी ने लिखा था "ये कहानियां कविता जैसी हैं।" बेशक ज्ञानी जी को 'अच्छी कहानी और जो अच्छी नहीं हैं' का अंतर मालूम था। इसलिए यह कहना शायद ठीक नहीं होगा कि ज्ञानी गुरुमुख सिंह 'मुसाफिर' को कहानीकार के रूप में मात्र आख्यान-लेखक से शुरूआत करके प्रयोगात्मक कहानी लिखने का पूरे का पूरा सफर तय करना पड़ा। ज्ञानीजी की कई आरंभिक कहानियां जैसे "सम इच्छा," (सब ठीक है) 'बागी दी धी' (बागी की बेटी), 'रेशमी लीडा' (रेशमी वस्त्र) आदि उतनी ही सफल हैं जितनी उनकी बहुचर्चित कहानियां: 'इक नवां पैसा,' (एक नया पैसा) 'बल्हड़वाल' 'अजायब' तथा 'दुचितनंद'। इन कहानियों की मनोवैज्ञानिक पक्ष सराहनीय है।

ज्ञानी जी की आरंभिक कहानियों में 'सम इच्छा' (सब ठीक है) एक जागरूक कलाकार की रचना प्रतीत होती है। एक घटना के बाद दूसरी घटना जैसे, कहानी

के रसे में और वृद्धि करती जा रही हो। और जैसे कथानक जलाल की दुःखभरी मृत्यु की ओर धीरे-धीरे कदम बढ़ाता चल रहा है। यह सब कुछ किसी साधारण प्रतिभा के कलाकार के वश की बाद नहीं। इससे भी अधिक मनोरंजक यह तथ्य है कि लेखक यह दर्शाने में विशेष रूप से सफल होता हैं कि कैसे शब्दों का अंधा-धुंध इस्तेमाल उनको अर्थहीन बना देता है। जेल के चौकीदार के लिए 'सम इच्छा है', (सब ठीक है) : चाहे कोई कैदी बीमार पड़ा हो। गुरा, जिसे सात साल की कैद सुनाई गई है, उसके लिए भी 'सम इच्छा है।' (सब ठीक है) है। बूढ़ासिंह के लिए भी जिसकी फांसी की अपील रद्द हो गई है। जेल के कर्मचारियों के लिए 'सम इच्छा है' (सब ठीक है) उस समय भी जब कुछ दिन की बीमारी के बाद मृत्यु को प्राप्त हुए जलाल के शव को उसके संबंधियों के हवाले किया जा रहा होता है। यह कहानी पाठकों को हमारी जेलों की स्थिति के बारे में एक कभी न भुलाई जा सकने वाली झलक प्रस्तुत करती है।

जहां तक शिल्प का संबंध है, 'बागी दी धी' (बागी की लड़की) एक अत्यन्त उत्कृष्ट कृति है। इस कहानी की सब से बड़ी खूबी यह है कि जो बात लेखक कहना चाहता है उसे इसमें एकसे अधिक कोणों से प्रकाश डाल कर दर्शाया गया है। बयान की किफ़ायत का यह तकाज़ा था कि कहानी को जगह-जगह पर तोड़ा जाए और फिर आवश्यकतानुसार कड़ियों को चुन लिया जाए। और इस प्रकार उन्हें एक कलात्मक ढांचे में ढाल दिया जाए। 'मुसाफिर' के भीतर के कलाकार ने यह सब कुछ अत्यन्त सफलता पूर्वक निभाया है। यह अकारण नहीं है कि कहानी में एक सरकारी अफसर अपने रिश्तेदार की बेटी से यूँ जान छुड़ाता है जैसे वह कोई महा-मारी हो। और हस्पताल की जमादारिन हस्पताल के नियमों की अवहेलना करके बीमार लड़की की मां को मरीज़ से मिलाने के लिए ले जाती है। और इससे पहले कि वह अपनी आंखें हमेशा-हमेशा के लिए मूँद ले, बागी की बेटी अपनी मां को एक नज़र देख लेने में सफल होती है। ऐसा लगता है जैसे वह मरीज़ लड़की मां की ही बाट देख रही थी। मां अन्तिम समय से एक क्षण भी पहले वहां नहीं पहुंच पाई। यह कहानी, एक ओर तो आज़ादी की लड़ाई में किसी देश भक्त के बलिदान का अद्वितीय वर्णन है, दूसरी ओर यह एक कुंवारी कन्या के हठ का चित्रण है। कैसे वह एक के बाद एक कष्ट सहती चली जाती है पर अपने मां-बाप को लज्जित नहीं होने देती। वह चुपचाप अकेली पड़ी मौत की घड़ियां गिनती रहती है, या ज्यादा-से-ज्यादा हस्पताल में छोटे-मोटे कर्मचारियों से बातें कर लेती है।

"रेशमी लीड़ा" (रेशमी वस्त्र) नामक कहानी का विषय सामाजिक है। इस कहानी का मंतव्य सही अर्थों में अछूत-उद्धार है। कहानी के अंत में एक खूबसूरत मोड़ है। सिख बनने के बाद भी एक अछूत एक प्रकार से अछूत ही बना रहता

है—गरीब और अनपढ़, अपनी हर जरूरत के लिए हाथ फैलाता हुआ। पर जो लोग ईसाई धर्म कबूल करते हैं, उन्हें पढ़ाया जाता है, प्रशिक्षण दिया जाता है और इस तरह उनको गरीबी से मुक्ति मिलती है। फिर उन्हें आवश्यकता ही नहीं रहती कि बाकी लोग उन्हें बराबर का समझें।

कहानी "ठिब्बी जुत्ती" (पिचके हुए जूते) साधारण पाठक के लिए एक चुनौती है। जब गांव का नौजवान लड़का वैराग्य उनके यहां आता है, मोची की लड़की अपने आपको कमरे में बंद कर लेती है क्योंकि घर में वह बिल्कुल अकेली है। लेकिन बन्द कमरे के झरोखे में-से उसे यह भी कहती है, बापू घर लौट आए तो जरूर आना नहीं तो फिर कभी नहीं बोलूंगी मैं तुम से। यह वही नूरी है जिसने एक बार दूध में आटा गूंध कर उसके लिए रोटी पकाई थी और वैराग्य यह बात भूल कर कि हिन्दू लोग मुसलसान के हाथ का पका हुआ नहीं खाया करते हैं, नूरी की रोटी खा लेता है। कई बरस बीत जाते हैं। पंजाब के बंटवारे ने नूरी को विस्थापित कर दिया है। फिर एक बार तीर्थ-यात्रा के बहाने पाकिस्तान गया वैराग्य क्या देखता है कि नूरो रेलवे प्लेटफार्म पर खड़ी उसकी बाट देख रही है। नूरो की गोद में उसका बच्चा है। जिसकी शक्ल हूबहू वैराग्य जैसी है।

"चुम्मी दे चोर" (बोसा चोर) जैसी कहानियों में जो बात मुझे महत्वपूर्ण लगती है, वह है ज्ञानी गुरुमुखसिंह 'मुसाफिर' की विशाल हृदयता जो एक स्वतंत्रता-सेनानी में ही संभव है। उसकी दृष्टि संकुचित नहीं है। कुछ राजनीतिक कार्यकर्ता यह मानने से इंकार करते हैं कि हमारे बीच जो खाते-पीते कुछ लोग हैं वे भी देश-सेवा कर सकने में सक्षम हैं तथा उनसे किसी प्रकार के बलिदान की आशा भी की जा सकती है। अगर कोई किसी खास खानदान में पैदा हो गया है तो उसे हमेशा-हमेशा के लिए बेकार समझा जाने लगता है। ठाकुर जनकराजसिंह रईस हैं पर एक भलामानस रईस। उसका इकलौता बेटा देश की आजादी की लडाई में कूद पड़ता है। उसके साथी क्रांतिकारी हैं। यह सब कुछ उसके पिता की जानकारी में है। जब भी पिता को अवसर मिलता है, वह हर संभव प्रयत्न करता हैं कि उसका पुत्र अपना संघर्ष जारी रखे।

'मुसाफिर' जी की कहानियों को दुबारा पढ़ते हुए मुझे ऐसा लगता हैं मानो उनकी पहले लिखी हुई कहानियाँ बाद में लिखी कहानियों से कहीं ज्यादा अच्छी हैं। उन कहानियों की गठन भी सुरुचिपूर्ण है, कथा-पक्ष भी अर्थपूर्ण है। ऐसा प्रतीत होता है कि अस्वाभाविकता या बनावट का ज्ञानी जी से दूर का संबंध भी नहीं था। वे तो एक सीधे-सादे और ईमानदार साहित्यकार थे।

प्रिन्सिपल तेजासिंह ने 'मुसाफिर' जी की कहानी-कला के बारे में इस तरह के विचार प्रकट किए हैं : "गुरुमुखसिंह को जीवन का विशाल अनुभव था। इस अनुभव के आधार पर ही वह अपनी कहानियां लिखता है। बहुरंगी लेखनी से

महान कष्टों को वर्णित करता है। और इससे वे कागज़ जिस पर उन्हें वह अंकित करता है, फट-फट जाते हैं।"

निःसन्देह ज्ञानी जी की कहानियों का क्षेत्र विशाल है। उनकी कहानियों में आज़ादी की लड़ाई का जिक्र है। सामाजिक समस्याओं की चर्चा है, हिन्दू-मुस्लिम एकता का वर्णन है, देश का बंटवारा और उसकी दुखभरी यादें उनमें अंकित हैं, शरणार्थी और उनके पुनर्वास के किस्से हैं, आज़ादी और उसके बाद के आज़ाद भारत की सफलताओं और असफलताओं का बखान है, और फिर सर्व-साधारण का चित्रण है, आम आदमी की दैनिक समस्या, उसके सपने और उसकी आशा-निराशा कहीं ज्ञानी जी बातचीत कर रहे होते हैं, कहीं वे मनोवैज्ञानिक शैली अपनाते हुए, अपने पात्रों के भीतर गहरे उतर कर उनके अन्तःस्थल में बैठ जाते हैं। कहीं वे कोई रेखा-चित्र प्रस्तुत करके ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। कहीं उनकी कहानी की विशेषता उस वातावरण में है जिसका वे सफलतापूर्वक चित्रण करते हैं। इसके अतिरिक्त ज्ञानी जी ने ऐसी कहानियां भी लिखी हैं जिनमें कोई कहानी नहीं है। ज्ञानी गुरुमुख सिंह 'मुसाफिर' की कहानियों की प्रमुख विशेषता वह संदेश है जो अपनी कहानियों के माध्यम से वे देते हैं। हर कहानी के पीछे कोई विशेष भावना रहती है, कोई विशेष विचार होता है, चाहे वह प्रत्यक्ष रूप में वर्णित हो या संकेतिक।

कहानी के क्षेत्र में ज्ञानी जी चाहे बाद में आए लेकिन कहानी-कला के साधनों का प्रयोग करने का कौशल उनको खूब अच्छी तरह आता था। उन्होंने कहीं नाटकीय शैली अपनायी तो कहीं प्रतीकात्मका, कहीं व्यंग है तो कहीं कुछ और। वे कई साधनों का बड़ी कुशलता से उपयोग करते हैं। ज्ञानी गुरुमुखसिंह 'मुसाफिर' ने सचमुच कुछ कमाल की कहानियां लिखी हैं जिनके कारण कहानीकार के रूप में वे चिरकाल तक याद किए जाते रहेंगे।

कहानी चाहे उनकी सृजनात्मक प्रक्रिया का प्रिय अंग बन गई पर जैसा पहले कहा गया है, ज्ञानी जी ने अपना साहित्यिक जीवन एक कवि के रूप में आरंभ किया था। अपनी जवानी के दिनों में वे गुरु के बाग के मोर्चे के लिए पोठोदार से एक जत्था लेकर अमृतसर आए। इससे पूर्व की जत्था गुरु के बाग पहुंचता जहां पहले उनकी पिटाई होती, और फिर उन्हें जेल भेजा जाता, ज्ञानी जी ने अकाल तख्त अमृतसर दीवान में एक कविता पढ़कर सुनाई। अकाल तख्त पर जत्थो को तैयार किया जाता था और उन्हें आवश्यक निर्देश दिए जाते थे। ज्ञानी जी की कविता सुन कर मोर्चे के नेताओं पर इतना प्रभाव पड़ा कि फैसला यह किया गया कि नवयुवक ज्ञानी गुरुमुख मुसाफिर को जत्थे के साथ न जाने दिया जाए। गुरु के बाग में तो उनकी पिटाई ही होती, और फिर काटनी पड़ती उन्हें जेल। जेल से बाहर रह कर उनसे ज्यादा अच्छा काम लिया जा सकता था। ज्ञानी जी को

मजबूरन जत्थेदार का आदेश मानना पड़ा । कुछ समय बाद वे स्वयं अकाल तख्त के जत्थेदार चुने गये । खालसापंथ में इससे ऊंची पदवी कोई नहीं है ।

ऊंचे-लम्बे, गोर-चिट्टे, हँसता हुआ सा चेहरा, ज्ञानी गुरुमुख सिंह 'मुसाफिर' अपने समय में अत्यन्त लोकप्रिय व्यक्तित्व वाले थे । उनके प्रशंसक कोसों रास्ता तय करके उनकी कविता सुनने आते । अपने समय में हर राजनीतिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक समारोह में उनकी मांग रहती । अपने ज़माने के प्रमुख कवियों हीरासिंह 'दर्द,' फीरोज़दीन 'शरफ,' विधातासिंह 'तीरे' और नंदलाल 'नरपुरी' में उनकी गिनती थी । फिर जब इस तरह के मंचीय कवियों के बाद की कवि-पीढ़ी सामने आयी, ज्ञानी जी उनमें भी वैसे ही लोकप्रिय हुए । इनमें कुछ प्रमुख नाम हैं- हज़ारासिंह 'मुश्ताक,' तेजासिंह 'साबिर,' जसवन्त राय 'राय,' गुरदेव सिंह 'मान' दर्शनसिंह 'आवारा' हज़ारासिंह 'गुरुदासपुरी,' बरकतराम 'युमन' और बिशनसिंह 'उपाशक' । 'दूर नेड़े' के स्रष्टा की यह विशेषता है कि वह समान अधिकार से धनीराम 'चात्रिक,' अवतारसिंह आज़ाद,' मोहनसिंह, बाबा बलवंत, प्रीतमसिंह 'सफीर' और गोपालसिंह 'दर्दी,' के साथ कदम मिला सकता है । ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर की पहली कविता जिसने उन्हें अपने समकालीन कवियों की प्रथमपंक्ति में ला खड़ा किया—उसकी कुछ-पंक्तियां इस प्रकार हैं :

दिला उठ खां गुरु दे बाग चलीए,
जाईए देखीए यार निशानीआं नूं ।

मत्था टेकिए, चुंमीए धरत जा के
अखीं वेखीए सुणीआं कहानीआं नूं ।।

(हे मन ! उठ, गुरु के बाग चलें, जाकर यार की निशानियां देखें । शीश नवायें, चूमें धरती को जाकर, आंखों से देखें सुनी-हुई कहानियों को)

प्रोफेसर मोहनसिंह का कहना है कि 1921 में पंजाबी साहित्य ने एक महत्व-पूर्ण मोड़ लिया । पंजाबी कविता, जो भाई वीरसिंह के प्रभाव के कारण आध्यात्मिक और सामाजिक रंग से ओत-प्रोत थी, अब राजनीतिक समस्याओं को भी दर्शाने लगी और प्रकट करने लगी उन दुविधाओं को भी जो समकालीन पाठकों को परेशान कर रही थीं । पंजाब में सिख किसी-न-किसी बहाने फिरंगी से जूझते ही रहे । देश के मंच पर महात्मा गाँधी छाए हुए थे । सिखों के हर आन्दोलन में स्वाधीनता के लिए राष्ट्रीय-संघर्ष प्रतिबिंबित होता था । जो कहानी जलियांवाला बाग कांड से 1919 में शुरू हुई, वह गुरु के बाग के मोर्चे के बाद नामा में जवाहर लाल नेहरू की गिरफ्तारी तक पहुंच गई । इन सब मोर्चों में ज्ञानी हीरासिंह 'दर्द'

और ज्ञानी गुरुमुखसिंह 'मुसाफिर' ने पूरा-पूरा योगदान दिया, और ये दोनों अपने समय के प्रमुख कवि थे।

कवि के रूप में 'मुसाफिर' पंजाबी कविता के मोड़ पर खड़े प्रतीत होते हैं—एक महत्वपूर्ण मोड़ पर। सिख गुरुओं की शान में कविताएं लिखना और उन्हें गुरु-पर्वों और सिख दीवानों में पढ़ने से शुरुआत करके 'मुसाफिर' अब बहुत आगे निकल आए थे। एक छलांग और लगाई और वे स्वतंत्रता-संग्राम में एक सेनानी की तरह जूझने लगे। इस काल में उनकी कविता देश-भक्ति की भावना से ओत-प्रोत प्रतीत होती थी। ज्ञानी जी का दृष्टिकोण सदा असांप्रदायिक रहा है। हिन्दू-मुस्लिम में, उच्च और निम्न वर्गों में, उन्होंने कभी कोई अंतर नहीं जाना। उनके अंतिम कविता-संग्रह 'दूर नेड़े' (दूर-पास) में एक कविता गुरु गोविन्दसिंह जी को सामने रख कर लिखी गई है 'तेरा अखाऊण नूं मैनू संकोच है। (तेरा कहलाने में मुझे संकोच होता है) यह कविता इन पंक्तियों से समाप्त होती है :

नंगे नू कज्ज	नंगे को वस्त्र
भुखे नूं रजा	भूखे को अन्न
बेटिकाणे नूं टिकाणा	निराश्रित को आश्रय
देण लई	देने के लिए
जहां आप आ	या स्वयं आ
जां जो केवल नां तेरा	या जो केवल तेरे
वरतदे	नाम का इस्तेमाल करते हैं।
उन्हाँ नू फिर निसचे	उन्हें फिर से
इह करा :	भरोसा दिला
दर हिरदे विच	हर हृदय में
तूं मौजूद है	तू मौजूद है
गरीब दा मुंह	गरीब का मुंह
गोलक है तेरी	गुल्लक है तेरी
लोड़-वद दी लोड़	जरूरत मंद की जरूरत
तेरी लोड़ है	तेरी आवश्यकता है

'मुसाफिर' मन से हमेशा प्रगतिशील रहे हैं। जब सिख गुरुओं की स्तुति में कविता कहते थे तब भी उनकी लेखनी में कोई सांप्रदायिक रंग या संकीर्णता की गंध नहीं होती थी। उन्हें एकेश्वरवाद पर भरपूर आस्था थी और उनका यह विश्वास था कि उसे किसी भी रास्ते से पाया जा सकता है। सभी धर्म एक ही सच्चाई को प्रकट करते हैं। सभी रास्ते एक ही मंजिल पर ले जाते हैं।

आवे जरूर आवे, रसते किसे तो आवे
पावे जरूर पावे, रसते किसे तो पावे । **(नानक दा रब्ब)**

(आता है वह जरूर आता है, चाहे किसी भी रास्ते से आए। मिलता है उसे, जरूर मिलता है, चाहे किसी रास्ते से मिले))

साहित्यकार देश के प्रति लिखी कविताओं को दो भागों में बांटते हैं: देश-प्रेम की कविता और देश-भक्ति की कविता। ज्ञानी जी को देश-भक्ति की कविता के रचयिताओं में गिना जाता है। वे अपने देश से प्यार करते थे। अपनी मातृभूमि के प्रति उनकी अपार श्रद्धा थी, पर इसमें कोई संकुचित कट्टरता बिल्कुल नहीं थी। उन्होंने अपने देश के बारे में 'मेरा देश' और 'मेरा वतन' शीर्षक से कविताएं लिखी हैं। पंजाब के बारे में उन्होंने एक कविता कही है "पंजाब वंड तो पहिले" (पंजाब-विभाजन से पूर्व) उन्होंने अपने शहर रावलपिंडी के बारे में एक कविता लिखी है। लेकिन फिर भी जिस चीज से वे प्यार करते हैं, वे वहां के लोग हैं। उनके देश-वासी, मिट्टी-रेत, कंकर-पत्थर, गड्ढे-टीले नहीं।

रिहा हां वतन दा हुण तक पुजारी	वतन का अब तक पुजारी रहा हूं
नहीं उतरी अजे तक वी खुमारी	अभी तक उसका खुमार नहीं उतरा
लंघे शाइद इवें ही उमर सारी	शायद यूँही सारी उम्र गुजर जाए
मगर प्रबल है इह सोच जारी	लेकिन यह सोच अभी तक जारी है
मेरे जजबे इह जानण नूं ने काहले	मेरी भावनाएं यह जानने को उतावली हैं
वतन पूजां कि पूजां वतन वाले ।	देश को पूजूं या देशवासियों को पूजूं

"मुसाफिर" रुक नहीं जाते। वे महसूस करते हैं कि उनके देश की समस्या कानी-बांट है। यह एक संपन्न देश है, इसे हर न्यामत से मालामाल किया गया है। किसी चीज की यहां कमी नही। लेकिन मुसीबत यह है कि इस देश में धनी और अधिक धनी होते जा रहे हैं, और गरीबों को और अधिक गरीबी भोगनी पड़ रही है।

देश मेरे विच
की कुझ नहीं है
सभ कुझ है
पर सभ लई नहीं है
दीवे बुझ दे दिसदे जावणा
भरे तेल दे खूह
हुंदिआं सुदिआं

तरस रहे हां
थुड़ नहीं पर थुड़े पए हां [मेरा वतन]

मेरे देश में क्या है जो नहीं है ? सब कुछ है। पर सबके लिए नहीं है। दीपक बुझते हुए दिखाई दे रहे हैं, लेकिन तेल से कुएं भरे पड़े हैं। सब कुछ होने के बावजूद तरस रहे हैं। कोई कमी नही, लेकिन फिर भी अभावग्रस्त 'मुसाफिर' की सहानुभूति हमेशा निर्धन और साधनहीन, मजदूर और किसान से रही है, यानी उन लोगों से जिनकी हमेशा लूट-खसोट होती रही है। जब ज्ञानी जी भगतसिंह से मिले जो उसी जेल में कैद था, जान पर खेल जाने वाले क्रांतिकारी भगतसिंह ने ज्ञानी जी को उनकी कविता 'दोहाई' में से कंठस्थ किया हुआ यह पद्यांश सुनाया :

सवेरे उठां तारिआं दी में छावां
चढ़े दिन ते जावां डुबे दिन से आवां
कमाणं, कमाणं, कमावां, कमावां
हाए फिर वी रोटी रज्ज के ना खावां
लुटी जाऊंदी मेरी सारी कमाई
दोहाई, दोहाई, दोहाई, दोहाई !

(सुबह तारों की छाया में उठ जाता हूँ। दिन चढ़ने पर जाता हूँ, दिन डूबने पर लौटता हूँ। कड़ी मेहनत करता हूँ, खूब कड़ी मेहनत और फिर भी पेट भर रोटी नसीब नहीं होती। सारी कमाई लूट ली जाती है मेरी। दुहाई है, दुहाई है, दुहाई।)

पर जिस कविता ने 'मुसाफिर' को पंजाबी कवि-जगत में प्रथम पंक्ति में ला खड़ा किया, वह है उनकी कविता "बचपन"। 'बचपन' उनकी आरंभिक कविताओं में से है। एक अमर कृति। जितनी लोक-प्रिय यह तब थी जब यह लिखी गई थी, उतनी ही सर्वप्रिय यह आज भी है। जहां कही भी ज्ञानी जी जाते, चाहे देश में, चाहे विदेश में, उनके आखिरी दिनों तक कवि के प्रशंसक इस कविता को सुनाने की मांग करते। उस समय की दृष्टि से 'बचपन' एक लंबी कविता है। इसमें कवि के चिंतन की परिपक्वता और एक नये छन्द का अत्यंत कलात्मक और सफल प्रयोग है। वारिस शाह की हीर के बाद असांप्रदायिक रंग की शायद यह एक मात्र कविता है जिसे हजारों पाठकों ने कंठस्थ किया और जगह-जगह पर यह सुनी-सुनाई जाने लगी। इस कविता में एक अनोखा प्रवाह है और जिस सादगी से कवि महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डालने में सफल हुआ है—उसके फलस्वरूप यह कविता पंजाबी साहित्य में सदा-सदा के लिए एक मील पत्थर की तरह मानी जाती रहेगी। "बचपन" इस तरह की रचना है, जो अकेली ही अपने रचयिता

को अमर कर देती है। इस कविता का कोई भी पद्यांश पढ़ लीजिए, बांधकर रख देता है :

बीरे नूं धीरे मारिआ	बीरा को धीरा ने पीटा
मां इहदी उहनूं ताड़िआ	बीरा की मां ने धीरा को डांटा
उस आपणी मां नूं दसिआ	धीरा ने अपनी मां को बताया
गाल्हां दी मींह फिर वसिआ	फिर तो गालियों की बौछार होने लगी
गुत्तां ते पटीआं पुट्टीआं	जूड़े और बालों की खिचाई होने लगी
लड़ भिड़के जदों हटीआं	जब लड़-भिड़ कर ज़रा ठंडी हुई
बीरे दी मां बीरा लभे	तो बीरा की मां बीरा को ढूंढ़ रही थी
धीरे दी मां धीरा लभे	धीरा की मां धीरा को ढूंढ़ रही थी
बीरे दी बांह धीरे दे गल	बीरा की बांह धीरा के गले में थी
धीरे दी बांह बीरे दे गल	धीरा की बांह बीरा के गले में थी
उह आउंदे ने हसदे	हँसते-हँसते दोनों चले आ रहे थे
दिल दी सफाई दस दे	हृदय की स्वच्छता दर्शा रहे थे

"मुसाफिर" के जीवन में एक ऐसी घड़ी आई, जब सिख राजनीति से ऊपर उठ कर देश की आज़ादी की लड़ाई में वे कूद पड़े। फिर महात्मा गांधी और जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में वे आगे ही आगे बढ़ते गए। इस बात का उन्हें निश्चय हो गया कि भारतीय समाज में जो बुराइयां हैं, उनका कारण मुख्यतः देश की गुलामी है। इसलिए आवश्यकता इस बात की थी कि पहले विदेशी गुलामी से छुटकारा पाया जाए। अपने दल पर उन्हें पूरा भरोसा था। उन्हें नजर आ रहा था कि वह दिन दूर नहीं जब भारत आजाद हो कर रहेगा।

थोड़े दिनां विच संसार तक सी,
सांवे दिसणगे पार उरार बदले;
बदले कोई बदले भावें ना बदले
साडे राज विच साडी सरकार बदले (**बरतानवी सामराज**)
थोड़े ही दिनों में दुनिया देखेगी
साफ दिखाई देगा; आर-पार का परिवर्तन
अब कोई और चीज बदले चाहे न बदले
हमारी यह (विदेशी) सरकार बदल कर रहेगी (ब्रिटिश साम्राज्य)

मुसाफिर के भीतर का देशभक्त कहता है :

इक बख़श दे सिरफ इक
दौलत वतन दे पिआर दी

फिर बेशक मरजी तेरी
जिंद जान बेशक खस्स लैं ।

(बस एक ही वरदान माँगता हूं -- देश-प्रेम का । फिर जो भी तेरी इच्छा हो ले ले चाहे तो मेरे प्राण तक छीन ले)

फिरंगी के साथ इस संघर्ष में ज्ञानी जी और उनके परिवार पर घोर वज्र-घात हुए । 1921 से 1946 तक अधिकांश समय उनका जेल में ही कटता था । इस बीच उनके पिता जी का स्वर्गवास हो गया । कई दिनों से उनकी तबीयत ढीली चल रही थी । एक ही इच्छा थी कि बेटे से एक बार मुलाकात हो जाय और फिर वे आंखें मूंद लें । वे प्रतीक्षा करते रहे, करते रहे, पर उनके बेटे को रिहा नही किया गया । पैरोल पर बाहर आना, ज्ञानी जी के आत्म-सम्मान के विरुद्ध था । और फिर पिता और अधिक बाट नहीं देख सके । ज्ञानी जी ने इस घटना पर अत्यन्त हृदय-विदारक और करुण कविता लिखी है :

उतों बनेरा ढीह पिआ	ऊपर से मुंडेर ढह गई है
माड़ी उठावा किस तरहां ?	अब इस घर को कैसे बचाऊँ ?
बुनिआद दी इट उखड़ी	नीव की ईट उखड़ गई है
कंधां टिकावां किस तरहां ?	अब दीवार कैसे खडी करूँ ?

ज्ञानी जी का सबसे बड़ा सबल स्वयं उनकी पत्नी थी । एक नारी जो मानो शूरवीरता के सांचे में ढली हो । कष्ट पर कष्ट, विपत्ति पर विपत्ति, वह स्त्री सहन करती रही, पर क्या मजाल जो कभी शिकायत की हो । उसकी मदद के बिना, जिस प्रकार ज्ञानी गुरुमुखसिंह 'मुसाफिर' आजादी की लड़ाई में जूझते रहे, कभी न जूझ पाते । बार-बार, घर से कोसों दूर कई वर्षों जेल भोगते रहे ज्ञानी जी की अनुपस्थिति में उनकी पत्नी बच्चों के पालन-पोषण का दायित्व संभालती । उसने अपने बच्चों को शिक्षित किया । इस बीच ऐसे दिन भी आए, जब घर में खाने को कुछ नहीं होता था । ऐसा समय भी आया जब फीस न दे सकने के कारण बच्चों को स्कूल से निकालना पड़ा । पुलिस का कदम-कदम पर परेशान करना, पड़ोसियों के ताने और व्यंग्य-वचन; फिर भी हर बार जब उसका पति गिरफ्तारी देता, हर बार पुलिस जब उसको पकड़ने के लिए आती, श्रीमती मुसाफिर हंसती-मुसकराती अपने देश-भक्त भर्त्तार के गले में फूलों की माला डाल घर से उसे विदा करती ।

ज्ञानी जी ने मुझे बताया, एक बार जब उनकी पत्नी उनके गले में हार डाल रही थी, तो अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियां जैसे उपहास-स्वरूप हंसने लगीं । लेकिन श्रीमती मुसाफिर का मन डांवाडोल नहीं हुआ । वे अपने इरादे पर दृढ़ रहीं ।

उस शाम हवालात में एकाकी बैठे ज्ञानी जी ने अपनी प्रसिद्ध कविता "जींदी रहे मेरे बच्चिआं दी मां" (जीती रहे मेरे बच्चों की मां) लिखी । इस कविता का एक अंश :

मेरे दिल दी मालक राणी, मेरे लई वीटे लहू पाणी,
(मेरे हृदय की साम्राज्ञी, मेरे लिए खून-पसीना एक कर देती है ।)
कदे ना सरिआ मैथों निआं जींदी रहे मेरे बचिआं दी मां ।
(मैं उसके प्रति कभी न्याय नहीं कर पाया, जीती रहे मेरे बच्चों की मां)
गीत वतन दे बैठा गावां बेफिकरी दी बीन बजावां,
(मैं बैठा-बैठा देश के गीत गाता हूं, बेफिक्री की बीन बजाता हूं)
रहां आजाद जां कैद रहा, जींदी रहे मेरे बचिआं दी मां ।
(चाहे आजाद रहूं या कैद रहूं, जीती रहे मेरे बच्चों की मां)

श्रीमती मुसाफिर ने आजादी के बाद भी कवि की जिंदगी में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । जहां तक संभव होता, वे ज्ञानी जी को उन तत्वों से दूर रखतीं जो उनका नाम इस्तेमाल करके निजी लाभ उठाते थे और सामाजिक बुराई का कारण बनते थे । उन्हें इस बात का पता था कि उनका घर वाला बहुत भोला है, उसे किसी में कोई दोष नजर नहीं आता, हर किसी की मदद के लिए उठ कर चल पड़ता है ।

देश की आजादी के बाद ज्ञानी जी के कंधों पर कई राजकीय दायित्व भी आ पड़े । भाषाई-आधार पर पुर्नसंगठित पंजाब राज्य के वे पहले मुख्य मंत्री थे, एक मांग—जिसके लिए पंजाबी कब से संघर्ष कर रहे थे । चाहे कितनी राजकीय व्यस्तता हो, ज्ञानी जी लिखने-पढ़ने के लिए समय अवश्य निकाल लेते । और जब भी जरूरी होता अपने देश में या देश से बाहर साहित्यिक और सांस्कृतिक समारोहों में अवश्य सम्मिलित होते । 1954 में भारत के कुछ प्रमुख लेखकों के साथ स्टाकहोम में अंतर्राष्ट्रीय लेखक सम्मेलन में शामिल हुए । इसी प्रकार 1961 में टोकियों में हुई अन्तर्राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखकों की कांफ्रेंस में उन्होंने भाग लिया । 1965 में हैलसिंकी के अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सम्मेलन में उन्हें आमंत्रित किया गया । और फिर 1966 में एफ्रो-एशियाई सम्मेलन में भारतीय लेखकों के तीन सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल के वे नेता थे । इस सम्मेलन में उन्होंने वियतनाम पर एक कविता पढ़ी, जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई । 'मुसाफिर" जी सफ़र से कभी नहीं घबराते थे । जब अवसर मिलता, जिधर जाना होता, चल पड़ते । कई देशों की उन्होंने यात्रा की । इनमें सोवियत रूस, अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, स्विटज़रलैंड, संयुक्त अरब

गणराज्य, जापान, जर्मनी, स्वीडन, इटली, बैलजियम, ईरान, अफगानिस्तान और कैनेडा शामिल हैं।

वियतनाम पर उनकी कविता उपनिवेशवाद और सामंतशाही पर तीक्ष्ण प्रहार है। वे यह मानते थे कि वियतनाम में हो रहा युद्ध, दुनिया भर के पिछड़े हुए लोगों को इकट्ठा करने में सहायक सिद्ध हो सकता है :—

वीतनाम विच	वियतनाम में
लहू नहीं है वग रिहा	लहू नहीं बह रहा है।
संसार भर दे अमन दा	विश्व-शान्ति का
संदेश लिखिआ जा रिहै	संदेश लिखा जा रहा है
जित वी जंग-बाज़ दी	युद्ध-लोलुप की जीत भी
इक हार है।	एक हार है

कवि की भविष्यवाणी तब सत्य प्रमाणित हुई, जब अमरीकी सेनाओं को हारकर, वियतनाम में से निकलना पड़ा।

सोवियत रूस के एक दौर के अन्तर्गत ज्ञानी गुरुमुखसिंह 'मुसाफिर'' ने लैनन दे मकबरे ते' (लेनिन के मकबरे पर) नामक एक कविता लिखी। इस कविता में इस तथ्य को उजागर किया गया है। कि भारत के स्वाधीनता-संग्राम में लेनिन द्वारा प्रशस्त मार्ग की कितनी महत्ता है और कि भारतीय देशभक्तों का लेनिन ने किस सीमा तक पथप्रदर्शन किया है। आज तक भारत में, लेनिन को सम्मान से याद किया जाता है :

जिंदगी विच	जिंदगी भर
साहो साह होइआ	दम नहीं लिया जिसने
हमेश	साँस अब उसकी
हुण ते इहवे साह	जा मिली है
रल गए	सब साँसों में
सारिआं साहवां	नहीं है बेदम वह
दे विच	और चुप भी नहीं
बे साह नहीं	एक फूल है वह
उह चुप नहीं	स्वयं बोलती है खुश्बू जिसकी
फुल है, जिस दी कि	खुश्बू जिसकी
आपे बोलदी है वाशना	एक फूल है वह
खिलरदी है	फैलती है खुद
वाशना	खुश्बू जिसकी

इसी प्रकार जब 'मुसाफिर' अमरीका और कैनेडा गए, उन्हें पश्चिम के विकासशील लोगों के तौर-तरीकों पर बड़ा आश्चर्य हुआ। इन देशों में अपने लंबे दौरे के बीच उन्होंने कई कविताएं लिखीं, जिनमें विकसित पश्चिमी सभ्यता का चित्रण है। ये कविताएं 'दूर नेड़े' (दूर-पास) नामक उनके संग्रह में शामिल हैं, जो उनके मरणोपरांत प्रकाशित हुआ। अमरीका ओर अन्य पश्चिमी देशों की जिंदगी के बारे में अपने विचार 'मुसाफिर' जी ने अपनी कविता 'अमरीका 1990' में पूरी तरह से प्रकट किए हैं। इसी कविता में ज्ञानी जी यह बताते हैं कि जिस गति से पश्चिमी सभ्यता चल रही है, एक दशक में वह कहां पहुंच जायेगी :

अगे वधण लई
उच्चे उठण लई
कई साल सी लाए
तोड़ पहुंचे के

मिथी मंजल उते
होर ही सोचां पै गईआं
अज हुण बहि के
साइंसदान
इह अंदाजा ला रहे हण
कितना चिर लगेगा
पिछे जाण नूं
फिर किस टिकाणे उत्ते
टिकणा ठीक है
उलटे सारे विस्सण वाले
काले गोरे ते गोरे काले

आगे बढ़ने के लिए
ऊंचे उठने के लिए
कई वर्ष लगाये थे
लक्ष्य पर पहुंच कर, तय की
हुई मंजिल पर
अब कुछ और ही सोचना पड़ गया है
आज बैठकर
वैज्ञानिक यह अनुमान लगा रहे हैं
कितना समय लगेगा
पीछे लौटने में
अब कहां हमें
रुक जाना चाहिए ?
सब कुछ उलट पलट गया है
जो काले थे वे गोरे दिखाई दे रहे हैं—
और जो गोरे थे वे काले

ज्ञानी गुरुमुखसिंह 'मुसाफिर' ने एक शानदार, भरपूर जीवन जिया। उन्हें असीम आदर मिला, बड़े-बड़े महत्वपूर्ण दायित्व उन्होंने संभाले, एक के बाद एक प्रशंसा उन्हें मिलती चली गई, फिर भी उनका मन जाने कहीं और हो, राजकीय ऐश्वर्य की उनके निकट कोई महत्ता नहीं थी। "लीडरी दी फिक" (निःसारता नेतागिरी की) कविता में वे इसका बखान करते हैं।

मरदी मनुक्खता वेख के, तूं पत्थरा रोइआ नहीं।
ना मातम ना कोई मरसीआ, इक वैण तक छोहिआ नहीं।
हुण ते बराबर जापदा, होणा जा ना होणा तेरा।

इक चुप धब्बा धोबीआ धोणांसी किस धोणां तेरा
कावि जिंदगी बखश दै तूं अरथ उलेट कर गिआ।
लोक समझेण लग पए, शाइर मुसाफिर मर गिआ
कावि दे आकाश दी जे शुध हवा तूं माणनी
तां लीडरी दे टिबिआं दी छड़ मिट्टी छाणनी।
(तू ने मनुष्यता का कत्ले-आम देखा
और ए पत्थर ! तू रोया तक नहीं
न कोई मातम न कोई मरसिया
तेरे होंठो से कोई भी मातमी बोल न फूटा
अब कुछ मतलब नहीं रखता—,
तुम्हारा जीना या न जीना
तुम्हारी खामोशी एक पाप है,
यह धब्बा तुम्हारे लिए धोयेगा कौन ?)

कविता जीवनदायिनी होती है—इस बात के तुमने उलटे अर्थ लगा लिए
लोग अब कहते हैं—मुसाफिर जो कवि था, मर चुका है, यदि कविता की शुद्ध हवा में सांस लेना चाहते हो तो राजनीति की खाक छानना छोड़ दो।

वास्तविक रूप में एक कवि, हर सुन्दर वस्तु के प्रेमी, 'मुसाफिर जी' के जीवन में एक क्षण ऐसा आया, जब अपनी तमाम प्रशंसा-श्लाघा उन्हें निरर्थक महसूस होने लगी। उनका जी चाहता कि गुमनाम होकर वे कही खो जाएं। जो उनका मन चाहे, करें—बिना इस डर के कि लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे ? उनकी कविता "आ सजनी गुम चलीए" (आ सजनी खो जाएं) इस भाव को दर्शाती है। जैसे किसी रोग से जान छुड़ाने को कोई छटपटा रहा हो। जिंदगी के नए ढांचे से उन्हें उलझन होने लगी थी। वे इस से भाग जाना चाहते थे, कहीं खो जाना चाहते थे :

"गुंम गए हां" इस चिंता दी
इक पल दो पल लाहीए।
गुंमणा है तां सचमुच गुंमीए
अपना-आप भुलाईए।
इक दूजे नूं आपना दिस्सीए,
ऐसे रलमिल घुलिए।
रोज-रोज दी भटकण मुक्के
इक वेरां गुम चलीए

"गए हैं खो हम" सह चिंता भी
इक पल, दो पल छोड़े
खोना है तो सचमुच खो जाएं
अपना-आप भुलाएं
इक-दूजे को नजर न आएं
ऐसे घुल-मिल जाएं
रोज रोज का मिटे भटकना
एक बार कुछ ऐसे गुमहो।

किसे कुराहे पईए ऐसे	आ सजनी खो जाएं
ना कोई वेखे ना कोई आखे	किसी कुराह पड़ें हम ऐसी
कित वल जानीएं झलीए	न कोई देखे, न कोई पूछे :
	"कहां जा रहे हो, दीवानो।"

"मुसाफिर" की कविताओं पर एक समूची दृष्टि डालने पर आश्चर्य होता है कि जैसे एक कवि जिसका पोषण शुद्ध परम्परागत कविता से हुआ, जिसने नई कविता के रुझानों का कोई विशेष अध्ययन नहीं किया था, इस तेजी से अपने काव्य में शब्द-चयन पद रचना तथा छन्दों और शैली की नवीनता लाने में सफल हुआ। एक ओर उन्होंने पुराने ढंग की रुबाईयां लिखीं, रुबाइयां का उनका एक अलग संग्रह है—सहज सेती। इन रुबाइयों में किसी मंजे हुए उस्ताद का स्पर्श झलकता है और दूसरी ओर उन्होंने नई-नई बहरों में, नए-नए विषयों पर, नए-नए सांचों में ढली कविताएं लिखीं। पहले ज्ञानी जी की कुछ रुबाइयां :

मेरी छाती ते किउं कसनें	अपनी तीखी संगीनों का रुख
इह तिक्खिआ संगीना ?	मेरे सीने की तरफ क्यों करते हो ?
तेरे ही वस्सण दा घर है,	इसमें तो स्वयं तुम ही बसते हो,
सज्जण मेरा सीना !	मेरे मित्र।
डर है किधरे तेरीआं चोमां	तुम्हारी यह चुभन कहीं तुम्हें
तैनूं ही ना लग्गण,	ही घायल न कर दे
इक दूजे उत्ते है निरभर	इक दूजे पर निर्भर है
तेरा मेरा जीणा।	तेरा मेरा जीना,
कीते पाठ निमाजां पढ़ीआं	**बहुत पूजा-पाठ किया, बहुत सिजदे किए**
रब्ब नूं खूब धिआइआ।	**खूब ध्यान किया ईश्वर का**
मंदर, मसजिद, गुरु-दुआरे	**मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारों में जा जा कर**
जा जा के जस गाइया	**यशोगान किया उसका**
हरिमंदर हर-जन दा हिरदा	**हरि मंदिर जन-जन का हृदय है**
जे टुटिया तां समझो;	यदि टूट गया तो समझ लेना
इक मंदर दी पूजा कीती	एक मंदिर को तो पूजते हो तुम
इक मंदर तूं ढाहिआ।	और एक को तहस-नहस करते हो
चंगा होइआ जग्ग ने मैनूं	अच्छा हुआ जो दुनिया ने दीवाना
समझ लिआ दीवाना।	समझ लिया मुझे,
इस इक गल्ल ने मेरे गलों,	और इस एक बात ने जग भर से
लाहिआ कुल जमाना।	छुटकारा दिला दिया मुझको

हर कोई आखे पागल है इह,	हर कोई कहता फिरता है—पागल है
इस दा दोष ना कोइ;	यह पागल ! इसका कोई दोष नहीं ।
कितना सोहणा मिलिया मैनूं	कितना अच्छा, अपने-आप
आपणे आप बहानां ।	बहाना मिल गया है मुझे ।

और अब उस कविता का एक अंश जो आधुनिक शैली, ओजपूर्ण छन्द बातचीत का लहजा और नितान्त नूतन पद-संरचना तथा "नई दिलेर दुनिया" का मुहावरा प्रस्तुत करती है । ज्ञानी जी ने यह कविता जतीन्द्रनाथ दास की (बलिदान) शहादत पर लिखी थी :

जद इकसी आसान सी	जब एक था, आसान था
विच जिसम दे बंद जान सी	जिस्म में बंद जान थी
हुण इक नहीं, हुण दो नहीं	अब वह एक नहीं, दो नहीं,
तिन चार या पंज सौ नहीं	तीन, चार या पांच सौ नहीं
जे पकड़न दी लोड़ है	पकड़ना चाहते हो अगर
समझो उह तेती करोड़ है	तो समझलो तैंतीस करोड़ है
नहीं, एस तों वी वध है	नहीं, इससे भी ज्यादा है
उहदी ना कोई हद्द है	उसकी कोई सीमा नहीं
हुण पकड़ लउ, हुण पकड़ लउ	अब पकड़ लो, अब पकड़ लो
पकड़ोगे की ? पकड़ोगे की	पकड़ोगे क्या ? पकड़ोगे क्या ?
(दास दी मौत)	(दास की मौत)

मोहनसिंह के पंजाबी कविता के मंच पर प्रकट होने से बहुत पहले ज्ञानी गुरुमुख सिंह 'मुसाफिर' ने पंजाबी कविता में सामाजिक चेतना का रंग भरा। आत्मा-परमात्मा तथा जीवन-मृत्यु से संबंधित प्रश्नों से अलग हट कर, समकालीन समस्याओं से प्रभावित होकर उन्होंने कविता लिखी । मुसाफिर ने उन बातों का जिक्र किया जो उनके आसपास साधारण व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण थीं और उसे परेशान कर रही थीं । इसने उनकी कविता को एक नया अर्थ और रूप प्रदान किया । आखिर 'बचपन' जैसी कविता किसी तैयारी के बाद ही लिखी जा सकती है ।

ज्ञानी गुरुमुख सिंह 'मुसाफिर' बहुमुखी प्रतिभा के लेखक थे । कहानी लेखक और कवि होने के अतिरिक्त कई वर्ष 'अकाली पत्रिका' के मुख्य संपादक भी रहे । ज्ञानी शादीसिंह के अनुसार जो उनके स्टाफ (अमले) में काम करते थे, 'मुसाफिर' जी को दैनिक पत्र का संपादन करने के अलावा अखबार के लिए चंदा भी इकट्ठा करना होता था ताकि अखबार का खर्च पूरा किया जा सके । ज्ञानी जी दोनों काम

बड़ी सफलता पूर्वक कर लेते थे। जन-साधारण में उनकी लोकप्रियता और अकाली दल में उनकी साख के कारण वे दोनों काम हंसते-खेलते कर लेते। जहां तक अखबार का संबंध हैं उनका यह सिद्धान्त था कि हर समाचार को ईमानदारी से प्रकाशित किया जाए। चाहे वे दौरे पर होते या दफ्तर में, उनके इस निर्देश का पूरी तरह से पालन किया जाता। उनकी संपादकीय नीति उनके दल की नीति थी : सिखों के अधिकारों के लिए संघर्ष और देश की स्वाधीनता के लिए निरन्तर युद्ध। जहां तक संभव होता वे हर रोज़ अपने अमले के साथ मिल कर बैठते और गत दिवस के पत्र की समीक्षा करते। उन्हें अपने अमले पर पूरा भरोसा होता था और उनके साथ काम करने वाले उनके प्रति पूरी वफादारी रखते थे। 'मुसाफिर' जी ने ज्ञानी हीरासिंह 'दर्द' के साथ मिलकर अपने समय की प्रमुख मासिक साहित्यिक पत्रिका 'फुलवाड़ी' भी शुरू की। पर कुछ समय बाद वे इस नतीजे पर पहुंचे कि उनकी पत्रिका 'मुसाफिर' और 'दर्द' दोनों को नहीं पाल सकती थी। इसलिए चुपचाप अलग हो गए। 'दर्द' ने यह पत्रिका कई वर्ष बड़ी सफलतापूर्वक चलायी। जीवन के अंतिम दौर में वे एक साप्ताहिक पत्र निकालने की सोच रहे थे। पर उनका यह सपना पूरा नहीं हो सका।

एक वक्ता के रूप में ज्ञानी गुरुमुखसिंह 'मुसाफिर' की सदा बड़ी मांग रहती। वे बड़े सर्वप्रिय वक्ता थे। उनका बोलने का अंदाज बड़ा प्यारा था। अपने भाषणों में वे पंजाबी कविता और उर्दू के शेर सुनाते और श्रोताओं को मानों मंत्रमुग्ध कर देते। चाहे कोई देहाती समागम हो अथवा लोक सभा का मंच, ज्ञानी जी समान रूप से लोकप्रिय वक्ता थे। इतने वर्ष वे संसद के सदस्य रहे पर एक बार भी स्पीकर (लोकसभा अध्यक्ष) को यह नहीं कहना पड़ा कि ज्ञानी जी अपने भाषण को संक्षिप्त अथवा बंद करें।

एक फरिश्ता-सीरत इंसान, सचमुच का त्यागी, राजनीतिक नेता, एक अद्वितीय लगन का कलाकार, कुछ इस तरह का व्यक्तित्व था ज्ञानी गुरुमुख सिंह 'मुसाफिर' का। कहते हैं, जब वे पैदा हुए, कमरे की छत को तोड़ उसमें से नवजात शिशु को निकाला गया ताकि वह दीर्घायु हो। और फिर एक दिन सोते-सोते छत फाड़ कर कोई आया और हमारे ज्ञानी जी को ले गया।

कहानियाँ

सब ठीक है

जलाल को जेल में बन्द हुए अभी मुश्किल से पांच छह दिन ही हुए थे। उम्र तो इसकी बीस साल से कुछ महीने ही ज्यादा होगी, शरीर का भी तगड़ा है, पर बीमारी के आगे किसी का वश नहीं चलता। नवंबर का महीना; मेंह पड़ा नहीं, सूखी ठंड, ठीक खुराक न मिलने से कैदियों की हड्डियों को चरचरा रही थीं। जलाल को पहले दो दिन रोटी नहीं भायी, जुकाम से मामूली बुखार भी हो गया। इतनी-सी बीमारी की उसने बाहर भी कभी परवाह नहीं की थी, पर यहां उसके परवाह करने या न करने का सवाल ही नहीं था। यहां तो कैदी के बीमार होने का भरोसा ही तब किया जाता है,जब वह जिस्म की कैद से छूट रहा हो। कैदी आर उस पर भरोसा किया जाए, यह कैसे हो सकता है। मर कर ही कैदी अपनी बीमारी का यकीन दिला सकता है। जलाल अभी नया था। उसमें जवानी की ताकत थी, इसलिए वह चार-पांच दिन के बुखार का मुकाबला करके उठ बैठा।

जेल जाने के दूसरे दिन ही वह बीमार पड़ गया था। इसलिए बैरक में उसने एक रात ही काटी थी। 'सब ठीक है' की आवाज उसके कानों में पड़ती रही। कैदियों में से किसी के साथ अभी उसकी इतनी जान-पहचान नहीं हुई थी। इसलिए उसने किसी से नहीं पूछा कि इस 'सब ठीक है' का क्या मतलब है। वैसे साधारण तौर पर 'सब ठीक है' का अर्थ तो वह जानता ही था। वह देखता भी था कि बैरक में कोई बीमार नहीं, इसलिए 'सब ठीक है' ही। पर फिर भी थोड़ी-थोड़ी देर बाद यह आवाज़ अजीब सी लगती थी। अस्पताल में आए हुए जलाल को कुछ दिन हो गए। पांचवें दिन डाक्टर ने जब उसका हाल पूछा, बात अभी डाक्टर के मुंह में ही थी कि खाट से उठकर जलाल ने कहा, "आज तो मैं बिलकुल स्वस्थ हूं।" जलाल की बात सुनकर अस्पताल के कमरे में पड़े सब रोगियों की हंसी छूट गई। बीच में-से एक ने धीरे से कह ही दिया, "भोला पंछी हैं।" डाक्टर ने जलाल की टिकट पर कुछ लिखा और चला गया।

थोड़ी देर बाद जलाल कागज के मिल के हौदों में गले-तक भरे पानी में खड़ा था। जलाल को तब भी पता न चला कि डाक्टर के सामने उसके यह कहने पर कि अब वह बिल्कुल स्वस्थ है, बाकी बीमार कैदी क्यों हंसे थे। हौदों में सारा दिन कागज गलाने की मशक्कत पूरी करके,जब जलाल बैरक में लौटा तो थकावट

से निढाल वह अपने सोने के चबूतरे पर गिर गया। उसका शरीर सर्दी से कांप रहा था। हाथ-पांवों में ताकत नहीं थी पर चेहरा लाल था। आंखों में-से पानी बह रहा था। ओठ पीले ज़र्द पड़ गए थे। उसने कहा, "मेरी जीभ सूख रही है। छाती के दायीं ओर से टीस-सी उठती है और बायीं ओर निकल जाती है।" एक कैदी अपने लोहे के बरतन में नल से पानी भर लाया। जलाल ने एक-दो घूंट भरे। उसे उल्टी आ गई। उसे चबूतरे पर लिटा दिया गया। एक साथी कैदी ने दो कम्बल जोड़ कर उस पर डाल दिए और सिरहाने की तरफ एक बरतन रखकर सिर ऊँचा कर दिया।

बैरक के सभी कैदी अपने-अपने बरतन लेकर बैरक से बाहर रोटी खाने के लिए बैठ गए। कुछ देर बाद ही "अरे उठो उठो, जल्दी चलो" की लगातार आवाजें शुरू हो गई। किसी के मुंह में कौर, किसी के हाथ में रोटी का टुकड़ा अभी बाकी था, कोई नल पर बरतन धोकर पानी के घूंट से ग्रास गले से नीचे उतार रहा था, कोई बरतन बगल में दबा, पेशाब करने भागा जा रहा था। झट-पट गिनती करके, बैरक का दरवाजा बन्द हो गया और कैदी अपने अलग-अलग झुरमुटों में गप-शप करने लगे।

सारे दिन का थका-मादा सूरज चाहे अपने चेहरे की मांदगी को अब छिपा नहीं सकता था पर अपने परोपकारी स्वभाव का आखिरी चमत्कार दिखाने से संकोच भी नहीं कर रहा था। मद्धिम सुनहरी किरणों पर न तो अमीर अली वार्डन का कोई अवरोध प्रभाव डाल सकता था और न ही बैरक के सलाखों वाले दरवाजे उनके आगे रुकावट खड़ी कर सकते थे। इस धीमे प्रकाश में बैरक के कई कैदी अपने-अपने धर्म-ग्रंथों का पाठ कर पाने का लाभ उठा रहे थे। कोई 'पंज-ग्रंथी' तो कोई 'कुरान' पढ़ रहा था। सूरज डूबने से सूरज निकलने तक की रोशनी का प्रबन्ध मनुष्य के हाथों में है, लेकिन कैदी इससे वंचित थे। कैदियों में भी बहुत-सारे कैदी पढ़ने के लिए रोशनी की मांग करने की बजाय अंधेरे में अपने अंधियारे जीवन पर सोच-विचार करने में सुख ढूंढ रहे थे।

जिस बैरक की हम बात कर रहे हैं, उसका नम्बर एक था। और लोग तो, जैसे बताया है, अपने-अपने काम में लगे हुए थे, लेकिन एक गोरे से रंग का कैदी, जलाल के सिरहाने की ओर, अपने और जलाल के चबूतरे के बीच टाट बिछाए बैठा था। इसने जलाल के शरीर को छुआ तो उसे लगा जैसे अंगीठी तप रही हो। जलाल बेहोश पड़ा था। समय, रात के नौ बजे होंगे। एक-एक कर कैदी सोते जा रहे थे। बैरक के कोने पर जंगले के पास खड़ा नम्बरदार बोला, "ब्यासी कैदी और दो उड़दी" (वे कैदी जिनकी बैरक या कोठी रोज बदल दी जाती है।) वाली पहली बारक (बैरक) "सब ठीक है।"

ऐसा लगता था कि "सब ठीक है" ये शब्द जलाल के कानों में बम की तरह गिरे हों। लेटे लेटे ही उसने बेचैनी प्रकट की और कहा, "शफी को मेरे पास बुलाओ।"

यह सुनकर पास बैठे कैदी ने कहा, "वह तो दूसरी बैरक में है।"

फिर आवाज आई, 'सब ठीक है।' जलाल एक बार तो जोश में, चबूतरे पर उठ कर बैठ गया। साथी कैदी ने उसे फिर लिटा दिया। जलाल ने पूछा, "यह 'सब ठीक है' की आवाज कहां से आती है ?" साथी ने कहा, "अपनी बैरक पर तैनात नम्बरदार अपनी नौकरी बजा रहा है।"

जलाल को बुखार के साथ छाती में दर्द भी था, पर वह सब कुछ सहन करता हुआ, बेबस चुपचाप लेटा हुआ था। अब थोड़े-थोड़े अंतराल के बाद 'सब ठीक है' की आवाज़ ने उसे बेचैन कर रखा था। उसने अपने मन की बात एक बार तो अपने साथी कैदी से कह ही डाली—"मैं बुखार और दर्द से मर रहा हूं और यह कहता है, 'सब ठीक है'।" बुखार और दर्द की पीड़ा तो जलाल सह गया, पर इस 'सब ठीक है' की आवाज को सहन करना उसके लिए कठिन हो गया। उसने एक बार चिल्लाकर नम्बरदार से कहा, "कान मत खा, चुप रह, क्या सब ठीक है, सब ठीक है की रट लगा रखी है ?"

जलाल की बात सुनकर सारे कैदी हंस पड़े। जलाल और भी झल्ला उठा। एक फौजी भगोड़ा चन्नणसिंह उसी दिन जेल में डाला गया था और संयोग से वह इसी बैरक में था। उसने कहा, यह कैदी बीमार है और नम्बरदार "सब ठीक है" न कहे तो क्या हर्ज है ?"

/सारे कैदी फिर हंस पड़े और एक ने कहा "नम्बरदार को नम्बरदारी से हटना हो तो 'सब ठीक है' कहना बंद करे, है न ?"/

ये बातें हो ही रही थीं कि चन्नणसिंह जलाल के निकट आया। उसकी हालत देख कर कहने लगा, "यह बहुत बीमार है, डाक्टर को बुलाना चाहिए।" बाकी कैदी कहने लगे, "तौबा, कैदियों के लिए कोई डाक्टर क्या इस समय आया करता है।"

"क्यों नहीं, उसकी ड्यूटी है।" चन्नणसिंह ने कहा।

"ऐसा पहले तो कभी नहीं हुआ कि कैदियों के लिए डाक्टर रात को आए।" कैदियों ने एक साथ जवाब दिया।

चन्नणसिंह ने नम्बरदार से कहा, "तुम डाक्टर को बुलाने का प्रबंध करो, नहीं तो "सब ठीक है" कहना बंद करो।"

चन्नणसिंह की बात सुनकर सब कहने लगे, "इस भाई को मालूम नहीं, यह आज ही आया है। 'सब ठीक है' का मतलब तो यह है कि बैरक में कैदियों की

गिनती पूरी है, ताले ठीक तरह से लगे हैं। जेल में और चाहे कुछ भी होता रहे, गिनती पूरी हो तो फिर सब ठीक है।

एक चंचल और तेज स्वभाव के कैदी ने कहा, "यहां कैदियों में भी 'सब ठीक है' के और अर्थ हैं। गुरु को सात साल की कैद हुई। उसकी अपील नामंजूर हो गई। मैंने पूछा, अपील की क्या जिगर आई है, तो कहने लगा, 'बस' सब ठीक ही हो गया है।' एक और कैदी बताने लगा, 'सात साल कैद की क्या बात है। बुट्टासिंह की फांसी की अपील नामंजूर हो गई। मैं अफसोस करने के लिए उसकी कोठरी के सामने गया तो यह दूर से ही कहने लगा, 'लो भई,' सब ठीक हो गया है।

कैदियों की ये बातें और 'सब ठीक है' के इस मामले के बारे में सुनकर चन्नणसिंह को भी अपनी फौज की एक बात याद आ गई। उसने कैदियों को बताया मैं सूबेदार मेजर दम तोड़सिंह का अरदली था। मेजर साहब के दोनों लड़के, घरवाली और एक लड़की—चारों जीव (प्राणी) एक-साथ मलेरिया से बीमार हो गए। डाक्टर आया। उसने सारे मरीजों को देखा, दवाई के नुस्खे लिखे। बुखार किसी का भी 103 डिग्री से कम नहीं था। डाक्टर जब देख-भाल करके अपनी मोटर-गाड़ी में बैठने लगा तो मेजर साहब ने पूछा कि बीमारों का क्या हाल है। डाक्टर यह कह कर चल दिया "सब ठीक है।"

मेजर साहब ने इस बात को महसूस नहीं किया, पर शाम को उनके एक लड़के की हालत बहुत खराब हो गई। डाक्टर फिर आया। उसने अच्छी तरह मरीज़ का मुलाहज़ा (परीक्षण) किया, नुस्खा लिखा। मेजर साहब के पूछने पर फिर "सब ठीक है" कह कर चला गया। मैं नुस्खा लेकर दवाई बनवाने गया और दवाई बनाने वाले कंपाऊंडर से पता चला कि वह नुस्खा निमोनिया के मरीज के लिए है। मैंने लौट कर मेजर साहब को बताया। अब तक तो उनका विचार था कि सब ठीक है, फिर उन्हें चिंता शुरू हुई। उन्होंने डाक्टर को फिर बुलाया। डाक्टर आया। उसने लड़के को देखा। उधर डाक्टर ने 'सब ठीक है' कह कर मोटर-गाड़ी में पांव रखा, उधर लड़का परमात्मा को प्यारा हो गया। मेजर साहब को लड़के के मर जाने से भी ज्यादा अफसोस डाक्टर की हरकत पर हो रहा था और दांत पीस कर वह कहने लगा, "इस पर मैं मुकदमा करूंगा।" उन्होंने कमान-अफसर से भी डाक्टर की शिकायत की। बाद में पता चला कि उस डाक्टर ने पहले पांच साल जेल की नौकरी की थी और 'सब ठीक है' उसकी जबान पर चढ़ा हुआ था।"

चन्नणसिंह की बात ने सब कैदियों का ध्यान उसकी ओर मोड़ दिया। जो सो रहे थे वे भी जाग गए। अब नम्बरदार ने सबसे कहा, "शोर न करो, इस

तरह 'सब ठीक है' की आवाज बुर्जी तक नहीं पहुंचती ।"

चन्नणसिंह ने नम्बरदार से कहा, "तुम जब तक डाक्टर को नहीं बुलाओगे, शोर बंद नहीं होगा ।" फिर चन्नणसिंह ने सब कैदियों से कहा, "देखो, हमारा एक कैदी भाई मर रहा है, इसे तेज बुखार है । अगर इस तरह के मौके पर डाक्टर नही आ सकता तो फिर उसकी जरूरत ही क्या है ?" तुम सब हिम्मत करके शोर मचाओ तो कोई कारण नहीं कि डाक्टर को बुलाया न जा सके ।"

कैदियों ने भी कहा, "यह भाई ठीक कहता है ।" शोर की आवाज़ बुर्जी तक गई, बुर्जी से ड्योढ़ी तक । गश्त करने वाले जमादार ने आकर बैरक नम्बर एक के कैदियों से कहा कि डाक्टर को संदेश भेज दिया गया है, वह थोड़ी देर में आता होगा । जलाल के बगल वाले चबूतरे का कैदी और चन्नणसिंह जागते रहे, बाकी कैदी सो गए । एक बजे कंपाउंडर आया, पर थर्मामीटर अपने साथ नहीं लाया । उसने आते ही मरीज़ से कहा, "उठ रे, क्या हुआ है तुझे ? कहीं प्राण निकले जा रहे थे ? दिन नहीं निकलना था क्या तुम्हारे लिए ? घर पर रोज डाक्टर को ही बुलाता होगा ?" यह कहते हुए, एक पहले से घुली हुई दवाई, जो वह अपने साथ ही लाया था, उसने जलाल को पिलाई और बुड़बुड़ाता हुआ चला गया—"ये रात को भी पलभर चैन नहीं लेने देते ।" जलाल ने कंपाउंडर से केवल इतनी बात कही कि मेरे गांव के शफी को मेरे पास बुला दो । कंपाउंडर ने तो कोई उत्तर नहीं दिया, पर बाहर दरवाजे के पास खड़े कर्मचारी ने कहा, "यह नहीं हो सकता, उसकी गिनती (हाजिरी) दूसरी बैरक में हुई है ।" चन्नणसिंह सुबह तक जलाल के सिरहाने बैठा रहा ।

निमोनियां, हां निमोनियां । अभी बुखार टूटा ही था, जुकाम अभी पूरी तरह ठीक नहीं हुआ था, कमजोरी थी । ऐसी हालत में हौदों की मशक्कत पर लगा दिया गया । मशक्कत के लिए पास करते समय न तो डाक्टर ने ध्यान दिया, और न कारखाने के बाबू ने ही ऐसे में निमोनिया न होता तो क्या होता । लेकिन यहां तो जैसे कोई चीटी मर गई वैसे कैदी मर गया । केवल हौदों की मशक्कत की बात नहीं है, सारी रात वह तड़पता रहा, कोई दवाई नहीं मिल सकी । चारों तरफ से खुली बैरक, चबूतरे पर सीधी हवा लगती थी । ओढ़ने के लिए कपड़े भी काफी नहीं थे । ईश्वर किसी को कैदी न बनाए और अगर बनाए तो उसे बीमार न करे । जलाल तो जवान भी चोखा था । सप्ताह भर में ही जैसे घुल गया हो । अब बचना मुश्किल है । इतना जोर डाक्टर पहले लगाता, पहले क्या, आज सुबह से ही कोई जतन करता तो शायद हालत में सुधार आ जाता । यह तो उस नए आए फौजी चन्नणसिंह ने दुहाई दी तब कहीं, बैरक में से उठा कर उसे अस्पताल में ले जाया गया ।

चन्नणसिंह भी नया था न, इसीलिए, नहीं तो कोई और कैदी अफसरों के सामने चूँ तक न करता। कोई मुँह खोले भी कैसे, यहां का तो बाबा आदम ही निराला है। जो कैदियों में से नम्बरदार बन जाए, बस वह तो समझता है कि मैं अफसरों से बड़ा हो गया हूं। बड़ी बात तो यह है कि यहां जेल खाने में किसी का सिर तक नहीं दुखना चाहिए। अब डाक्टर, जलाल के मुर्दा शरीर में जान डाल रहा है। कोई बताए, अब क्या हो सकता है। सुना है, कांग्रेसी कैदियों के लीडर ने साहब को खूब फटकारा है और कहा है कि यहां मरीज़ों की परवाह नही की जाती। इसीलिए डाक्टर अब जलाल के बिस्तर पर चिपका हुआ है। डाक्टर ने जलाल से पूछा, 'तुम्हारा क्या हाल है ? उसने कहा अब तो सब ठीक है।

जेल में उस दिन बस जलाल की बीमारी की चर्चा और इस तरह की बातें ही कैदी एक दूसरे से करते रहे। अस्पताल के सामने के दरवाजे से बाहर कोने में एक कैदी पड़ा था। उसकी आंखें तर थीं। एक कैदी ने उससे पूछा, "तेरा नाम शफी है ?"

उस जवान लड़के ने कहा, "हां।"

कैदी ने कहा, "कल सारी रात, जलाल तेरे बारे में पूछता रहा। अब क्या हाल है उसका ?"

शफी ने अभी मुंह खोला ही था कि उस कैदी को पीछे से आवाज आई। "अरे, किधर फिर रहा है ?" इसके साथ ही एक नम्बरदार कैदी ने उसे दो धक्के दिए, और कारखाने में जहां उसकी मुशक्कत थी, ले गया। यह कैदी वही था जिसका सोने का चबूतरा, बैरक नम्बर एक में, जलाल की बगल में था। आंख बचा कर वह जलाल का हाल मालूम करने आया था, मगर नम्बरदार की नजर उस पर पड़ गई थी। शफ़ी ने, जलाल को आवाज दी और उसके बाद अन्दर चला आया, लेकिन ज्यादा देर तक उसके पास ख़ड़ा नहीं रह सका। उसकी खराब हालत को वह देख नहीं सका। जलाल का मित्र शफी और जलाल दोनों एक ही ग्राम के वासी थे। एक ही मुकदमे में दोनों को कैद की सजा हुई थी। अस्पताल के मरीज़ कैदी शफ़ी से जलाल के बारे में कोई बात पूछते, तो उसका गला भर आता। वह कुछ बता नहीं पा रहा था। शफी ने एक बार भीगी आवाज में कहा, "जलाल का और मेरा, दोस्ताना है। इसका ब्याह तय पाया था। ब्याह के लिए लकड़ी-ईंधन इकट्ठा करने मैं और जलाल एक दिन बाहर, अपना कीकर (बबूल का वृक्ष) काटने गए। ईंधन का लदान गधों पर लादे आ रहे थे कि रास्ते में सरकारी सड़क पर शीशम का टूटा हुआ एक तना पड़ा देखा। हमने उठा कर उसे भी लदान पर रख लिया। तीसरे दिन महकमे (विभाग) वालों ने आकर जलाल के घर की तलाशी ली और ईंधन उनके यहां पाया गया। बस इतनी बात थी,

जिसके लिए हमें छः छः महीने की कैद हो गई। ब्याह बीच में ही रह गया। अब यहां कुछ और बात हो गई है।"

शफी की सीधी-सादी बात ने सबको रुला दिया। शफी अभी बात ही कर रहा था कि उसे आवाज़ आई, "मुझे जलाल बुला रहा है।"

डाक्टर ने शफ़ी से कहा, "मशक्कत से तुझे आज इसीलिए छुट्टी दिलाई है कि तू इसके पास बैठे, और तू है कि उधर गप-शप कर रहा है।"

डाक्टर की बात सुन कर शफी फूट ही तो पड़ा। जलाल ने इशारा किया। शफी उसके सिरहाने बैठ गया।

उधर सूरज का जलाल (प्रकाश) मद्धिम पड़ रहा था, इधर जलाल के जीवन की किरणों की ज्योति घटती जा रही थी। शफी पहले तो जलाल की खराब हालत को बर्दाश्त न कर सकने के कारण एक ओर जाकर खड़ा हो गया था, लेकिन अब वह उसके ऊपर झुका हुआ था। उसने बड़ा प्रयत्न किया कि वह कोई बात करे, पर उसे निराशा ही हुई। ब्याह की तैयारी में मेंहदी-रंगे जलाल के हाथों को जब शफ़ी ने अपने हाथ में लिया तो अपनी शिथिल पड़ रही उंगलियों से जलाल ने शफ़ी को कुछ समझाना चाहा, पर उसकी समझ में कुछ नहीं आया। जैसे-जैसे जलाल की तड़प घट रही थी, शफी की बढ़ रही थी। जेल के क्लाक ने छह बजाए। शफ़ी ने जलाल के होंठों से कान लगाए और सुना—"सब ठीक है।"

अस्पताल में से जलाल की लाश जेल की ड्योढ़ी के पास पहुंची तो जेलर गोदाम के नम्बरदार से पूछ रहा था, "इसके कंबल, कपड़े और बरतन गोदाम में जमा हो गए हैं क्या ?"

गोदामवाला कह रहा था, "जी हां, सब ठीक है।"

बागी की बेटी

किशनसिंह ने पुलिस को देखते ही झट कह तो दिया—"लो खालसा तैयार बर तैयार है," पर उसका चेहरा उसके मन के तूफान को छिपा न सका।

"अगर देर हो गई तो रात आपको थाने की हवालात में काटनी पड़ेगी। जेल और थाने की हवालात के फर्क को तो आप जानते ही हैं।"

पुलिस इंस्पैक्टर की यह बात सुनकर किशनसिंह ने कहा, "मेरे लिए एक-ही बात है। थाने की हवालातों में भी बहुत पसलियां घिसाई हैं।"

"नहीं, नहीं, मेरा मतलब···।"

किशनसिंह ने बीच में ही कहा, "आपका मतलब जल्दी से है न ? चलिए, मेरी तरफ से कोई ढील नहीं।"

जबान से तो किशनसिंह ने ये बातें कह दीं, पर उसका मन किसी और तरफ था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे उसकी कोई चीज़ खो गई है। जेल जाने से पहले अगर वह मिल जाए तो वह ज्यादा तसल्ली से इस सफर पर निकल सकता है।

"सरन।" किशनसिंह ने अपनी पत्नी को बुलाया।

"भाई साहब, भाभी तो मीटिंग में गई हुई है।" अन्दर से किशनसिंह की बहन वीरांवाली ने जवाब दिया।

इंस्पेक्टर के कान खड़े हो गए। किशनसिंह ने कहा, "वीरा, लाज के बुखार का कागज़ जरा उठाना।"

वीरांवली ने कागज़ (चार्ट) किशनसिंह के हाथ में थमाते हुए कहा, "भाभी ने जाते हुए कहा था कि इस समय 102 है, बढ़ जाए तो बरफ की पट्टी रखना।

किशनसिंह पहली बार जेल नहीं जा रहा था। इंस्पेक्टर उसकी दृढ़ता से भी अच्छी तरह परिचित है। इंस्पैक्टर को किशनसिंह की थोड़ी-सी परेशानी के कारण का भी अब पता चल गया। मीटिंग का शब्द इंस्पैक्टर के कान में कांच के टुकड़े की तरह खटका। साईकल पर पांव रखते ही उसने अपने सिपाहियों को आंख से कुछ समझाया और फिर किशनसिंह से कहा, "सरदार जी, आप बेशक आराम से तैयारी कर लें, मैं आता हूं।"

सामने कारखाने के बड़े फाटक से इंस्पैक्टर भीतर चला गया। बैठे हुए सिपाहियों में से एक ने कहा," इंस्पैक्टर साहब शायद कहीं टेलीफोन करने गए हैं।

वीरांवाली की आंखों से झरने फूटने ही वाले थे पर किशनसिंह की कुछ चढ़ी हुई त्यौरी देखकर, वह लाज की चारपाई के पीछे चौकी पर बैठ गई। किशनसिंह ने अपनी उंगलियों से लाज के बालों को सहलाते हुए कहा, "बिटिया, अब तो तू ठीक है। आज तो बुखार कम है, शायद कल तक उतर ही जाए। तुझे बुखार न होता तो मैं अब तक जेल चला गया होता। साथी तो सारे चले गए हैं।"

लाडली लाज ने धीमी सी आवाज़ में कहा, "पिता जी, तब तो मैं अच्छी लड़की नहीं हूं, जिसने आपके अच्छे काम में रुकावट डाली।"

"नहीं, लाज बेटी, तेरा इसमें क्या कसूर है ? बुखार कोई तेरे वश की बात तो नहीं है। पहले तो तुझे इस तरह छोड़कर जाने की मेरी हिम्मत ही नहीं हुई। जिस दिन बम्बई में हमारे बड़े नेता पकड़े गये थे, उस दिन मैं उनको बधाई देने के प्रस्ताव पर पांच मिनट बोला था, फिर मैं तेरी दवा और इलाज में ही लगा रहा, कहीं बाहर जाने का समय ही नहीं मिला। वैसे भी पहले नेताओं को ही पकड़ेंगे, हम छुट भइयों की बारी तो बाद में ही आयेगी। पर हमें आपत्ति भी क्या है, चाहें तो अभी पकड़ लें।"

किशनसिंह के मुंह से अभी ये शब्द निकले ही थे कि लाज ने भी उसी समय कह दिया, "बेशक पकड़ लें।"

किशनसिंह अपनी इकलौती लाडली से ज्यों ज्यों बातें करता गया, उसका मन हल्का होता गया। अब वह बेसब्री से सरन कौर की बाट देख रहा था। बरामदे की ओर देख कर वह तसल्ली कर लेता कि इंस्पैक्टर भी लौट कर नहीं आया है।

पास बैठी वीरांवाली पहले तो गला भर आने के डर से नहीं बोल रही थी, पर अब उसे भी कुछ हौसला-सा हो गया। उसने कहा, "लाज, अगर तेरे पिता जी पकड़े गए तो तेरा इलाज कौन करेगा ? तू उदास नहीं हो जायेगी ?"

"बुआ जी, इलाज के लिए आप जो मेरे पास हैं, माताजी जो हैं। बाकी रही उदासी की बात, मैं तो स्वस्थ होकर आप भी इस बार पिता जी के पास जेल में चली जाऊंगी।"

लाज की बात सुन कर वीरांवाली की बरबस हंसी छूट गई। लाज ने कहा, "नहीं बुआजी, हंसी की बात नहीं। अपने देश के लिए जेल में जाना कोई बुरी बात तो नहीं। मैं इस बार जरूर जाऊंगी।"

"लाज, तू तो अभी बारह साल की भी नहीं हुई।"

बुआ की बात सुनकर लाज ने कहा, "पिताजी, सुनिए बुआ की बात। मालूम होता है, बुआजी कभी गुरुद्वारे नहीं गई हैं। इन्होंने कभी कथा नहीं सुनी

है। पिताजी, बुआजी को बताना, साहबजादों की उम्र कितनी थी। वे तो इस उम्र में शहीद हो गए थे, मैं क्या जेल में भी नहीं जा सकती ?"

वीरांवाली की तो बात ही क्या, अब तो किशनसिंह की आंखें भी बेकाबू हो गईं। ये सान्त्वनाभरी प्रसन्नता के आंसू थे।

किशनसिंह ने लाज के सिरहाने से चाभियां उठाई, सामान वाले कमरे में ही उसने कपड़े बदले और फिर लाज के पास आ गया। लाज के इस सवाल ने कि पिता जी इस समय कपड़े क्यों बदले हैं, कहीं जा रहे हैं क्या ?—किशनसिंह का बहुत-सा काम आसान कर दिया। किशनसिंह को अब यही चिन्ता थी कि अपने अभी गिरफ्तार हो जाने की खबर बीमार लाज को किन शब्दों में बताये ? वीरांवाली की खास बेचैनी ने भी बहुत कुछ प्रकट कर दिया। किशनसिंह ने शब्दार्थ की पोथियां और नित्य-नियम का गुटका लाज के कमरे की आलमारी से ही निकाल कर अपने छोटे से बक्से में रखा। बरामदे में जूतों की आहट हुई। किशनसिंह ने बुखार से जल रहे लाज के माथे को चूमा। "मेरी लाज" का भावपूर्ण शब्द उसके मुंह से निकला। उसकी आंखों में जमे हुए मोती एक बार फिर पिघल गए। कमसिन लाज ने बड़ी बुद्धिमानी के स्वर में कहा, "पिताजी, मेरी चिन्ता न करो।"

घर के गली वाले दरवाजे से एक नौजवान भीतर घुसा और पुलिस की आंख बचाकर उसने किशनसिंह के कान में कोई बात कही। नौजवान वापस चला गया। किशनसिंह के चेहरे पर फिर गहरी गंभीरता छा गई। इसी हालत में, लाज संबंधी कुछ बातें वीरांवाली को समझा कर वह पुलिस के साथ तांगे में बैठ गया।

II

शहर की कोतवाली में टेलीफोन की घंटी बजते ही गारद को तैयार होने का हुक्म तो हो गया, लेकिन चलने का आर्डर एक घंटे के इंतजार के बाद मिला। छोटे बाजार से लगती पुरानी हवेली पर पुलिस द्वारा घेरा डालने की देर थी कि हवेली के बायें कोने वाले कमरे के गली की ओर खुलने वाले दरवाजे में से एक खादीधारी महिला दौड़ कर बाहर निकली। उसके हाथ में राष्ट्रीय-ध्वज और गले में कृपाण लटक रही थी। तुरंत ही उसके पीछे-पीछे कौमी नारे लगाती हुई, खादी की साड़ियों में और भी बहुत-सारी महिलाएं निकल आईं। गली वाले दरवाजे के सामने खड़ा सिपाही देखता ही रह गया और ये महिलाएं बाजार में जा पहुंची। "भारत माता की जय" के नारों से आसमान गूँजने लगा। थोड़ी ही देर में इतनी भीड़ जमा हो गई कि छोटे बाजार का रास्ता ही बंद हो गया। राष्ट्रीय ध्वज

वाली महिला ने झंडा ऊंचा उठा कर कहा, "कौमी झंडा।" जवाब में लोगों ने कहा, "सदा ऊंचा रहे।" एक पुलिसमैन ने आगे बढ़कर झंडा छीनने की कोशिश की। झंडेवाली महिला आगे बढ़ती जा रही थी। पुलिसमैन का हाथ गरदन में लटक रही कृपाण पर जा पड़ा। खींचातानी में मयान अलग हो गई और पुलिसमैन के हाथ में खरौंच आ गई। थोड़ा-सा खून भी निकल आया। पुलिस ने घबरा कर लाठी चार्ज शुरू कर दिया। बहुत सारी भीड़ तितर-बितर हो गई और झंडे वाली महिला ने झंडे को दोनों हाथों से कस कर थाम लिया। वह एक दुकान के सामने तख्ते पर धरना दे कर बैठ गई। बाकी महिलाएं भी जमीन पर बैठ गई। बहुत सारी भीड़ के तितर-बितर हो जाने पर पुलिस गारद के इंचार्ज ने पहले तो बड़े रौब से और फिर नरमी से, झंडे वाली महिला से झंडा छीनने की कोशिश की, पर महिला के अटल निश्चय के सामने उसकी एक न चली। महिला ने कहा, "यह झंडा हमारी जान के साथ ही जायेगा।"

आखिरकार महिलाओं के पूरे जत्थे को गिरफ्तार करके, तांगों में बिठा दिया गया। जेल के दरवाजे के सामने पहुंच कर फिर झंडे का झगड़ा छिड़ गया। महिलाएं कह रही थीं कि हम जेल की बैरक पर कौमी झंडा लहराने के लिए उसे भीतर ले जाएंगी। यह झगड़ा हो ही रहा था कि पुलिस किशनसिंह को भी लेकर जेल के दरवाजे पर पहुंच गई।

महिलाओं के जत्थे में झंडा हाथ में थामे बैठी अपनी सुपत्नी सरन कौर को देख कर किशनसिंह को कोई हैरानी नहीं हुई। ऐसा प्रतीत होता था किशनसिंह को इस घटना का पहले ही पता चल चुका था। किशनसिंह ने महिलाओं को समझाया, "आप झंडे के बारे में अपनी काफी दृढ़ता प्रकट कर चुकी हैं। जेल से बाहर आपने इसकी बेअदबी नहीं होने दी। अब आप जेल में हैं। अगर एक बार आपने बैरक पर झंडा फहरा भी दिया, तो जेल के कर्मचारी आपको बैरक के अंदर बंद करके झंडा फाड़ डालेंगे। इसलिए इसका कोई लाभ नहीं।"

अन्त में फैसला हुआ कि झंडा सम्मान-पूर्वक कांग्रेस के दफ्तर में पहुंचा दिया जाए। जेल के भीतर प्रवेश करके सरन कौर ने अपने पति से लाज के बारे में पूछा, पर कोई जवाब सुनने से पहले ही महिलावार्ड का दरवाजा खुल कर बंद हो गया।

III

अपनी बीमारी और मां की गिरफ्तारी के दुख से देश सेवा के लिए जेल जाने की उत्कट इच्छा प्रबल हो उठने से लाज कुछ दिनों में ही चलने-फिरने लग

गई। बुआ ने लाज की देख-भाल में कोई कसर न उठा रखी। लाज को वह अपने घर ही उठाकर ले गई थी।

वीरांवाली के पति जमादार हुशनाकसिंह को, अपने साले और सलहज के गिरफ्तार हो जाने की खबर गाड़ी में किसी जान-पहचान के व्यक्ति से मिली, जब वह घर छुट्टी पर जा रहा था। छावनी में कोई अखबार नहीं जाता था। हुशनाकसिंह का तांगा जब दरवाजे के सामने रुका तो लाज दरवाजे पर ही खड़ी थी। उसने पहले दौड़ कर फूफा जी के आने की सूचना बुआ को दी। फिर लौट कर, तांगे से उतर रहे फूफा जी से गले मिली। वीरांवाली ने पहले तो दहलीज पर आ कर अपने पति से सतश्री अकाल कहा, फिर झट भीतर दर्पण के आगे जा कर बाल संवारे, दुपट्टा बदला और एक चाव-चाव में, वापस बाहर लौट कर सामान को संभालने में लग गई। लाज भी छोटी-छोटी चीजें उठाने में अपनी बुआ को मदद देने लगी। पड़ोस के सज्जन-मित्र हुशनाकसिंह से हाल-चाल पूछने आ गए, वीरांवाली ने चूल्हे पर चाय का पानी रख दिया। पड़ोसियों के चले जाने पर ही चाय पिलाते हुए वीरांवाली को अपने पति से राजी-खुशी पूछने का अवसर मिला। उसने चाय में चीनी मिलाते हुए पूछा, "तबीयत तो ठीक रही न आपकी ?"

"पहले तो ठीक ही रहती थी, लेकिन लगता है अब तुम ठीक नहीं रहने दोगी।"

वीरांवाली को ऐसे ही उत्तर की आशा थी। वह अपने पति के चेहरे से उसके मन की हालत को तो पढ़ चुकी थी, पर नाराजगी के कारण की पूरी समझ उसे अभी नहीं आई थी। वीरांवाली ने बात को वहीं खत्म कर दिया।

हुशनाकसिंह ने मना करते हुए चाय की प्याली पी ली। रात के खाने तक वीरांवाली ने कोई बात छेड़ने का अवसर नहीं दिया। हुशनाकसिंह ने भारी मन से दो चपातियां गले से नीचे उतारी। वीरांवाली को तो खाना ही क्या था ? सोने के कपड़े बदल कर हुशनाकसिंह चारपाई पर लेट गया। वीरांवाली लाज को खाना खिला, बरतन आदि साफ करने के बाद, टांगे दबाने के बहाने अपने पति के पास चारपाई पर आ बैठी। दस-पन्द्रह मिनट दोनों ओर से खामोशी रही। हुशनाक सिंह ने करवट बदलते हुए जम्हाई ली, मानों वह पहले सो गया था और अभी-अभी उसे वीरांवाली के पास बैठने का पता चला है।

वीरांवाली ने कहा, "जी, इधर मुंह तो कीजिए आपको तो जग की रीति निभाना भी नहीं आता। बाट देखते-देखते मेरी तो आंखें थक गई हैं और आप हैं कि सीधे मुंह बात भी नहीं करते। कितनी छुट्टी मिली है ?"

हुशनाकसिंह ने फिर करवट बदली और आंखों पर हाथ रख कर कहने लगा,

तू अब लंबी छुट्टी ही समझ। सुख तुझे पचता नहीं। अभी तरक्की के दिन थे, पर तू मुझे कुछ बनने नहीं देगी।

"आप कुछ बात तो बताएं।"

"बात क्या बताऊं, तुझे मालूम नहीं क्या कि आजकल लड़ाई के दिन है, किसी फौजी के बागियों से मेल-जोल रखने को सरकार पसंद नहीं करती। अव्वल तो सरकार को पता ही नहीं चलने देना चाहिए कि कोई बागी हमारे संबंधी है। अगर पता चल भी जाए तो हम कह सकते हैं कि वे हमारे कहे-सुने से बाहर हैं। पर तू ने यह बला जान-बूझ कर क्यों गले से लगा ली ? बागी की बेटी को अपने घर रखना, तू जानती नहीं, कितना बड़ा अपराध है ?"

अपने पति की बात सुनकर वीरांवाली को कंपीकंपी सी छूटने लगी। उसे यह ध्यान नहीं था कि लाज को इस हालत में यहाँ लाना उसके पति के लिए इतना ज्यादा दुखदायी हो सकता है ? वह पसीना-पसीना हो रही थी। हुशनाकसिंह ने फिर दांत भींच कर कहा, "तू इस लड़की को मेरे घर क्यों लाई ?"

वीरांवाली ने भरे-गले से सारी व्यथा इस तरह सुनाई जैसे कोई पुजारिन देवी से किसी मन चाहे वरदान की भीख मांग रही हो। लेकिन तुरंत ही उसे अनुभव हो गया कि पति देव तो पत्थर की मूर्ति हैं। उसकी सारी आकाँक्षाएं और चाव छिन्न-भिन्न होकर उसकी आंखों के सामने परछाइयां-सी बन कर बिखर गए।

चारपाई के पांयते पर ही उसने रात काट दी। आँसुओं के बहुमूल्य मोतियों की भेंट चढ़ाई लेकिन पत्थर की मूर्ति अनुभूति-शून्य बनी रही, टस-से-मस न हुई। पति ने वीरांवाली को भी मानो अपराधिन-सा बना दिया।

घबराया हुआ आदमी अपनी घबराहट के कारण को छिपाने के जो साधन इस्तेमाल करता है, वह उसकी घबराहट को और भी ज्यादा प्रकट कर देते हैं। सज्जन-मित्रों तक बात पहुंच गई। सयानों की दलीलें और उदाहरण हुशनाक सिंह को कायल न कर सके कि उसके साले-सलहज की जिम्मेदारी किसी भी तरह उस पर नहीं आती। लाज को अपने पास रखना वह अपनी समस्त आशाओं के अन्त का संदेश समझता था। ज्यादा नहीं तो सूबेदार मेजर तो उसे इस युद्ध में बनना ही था। लाज के कानों में भी कोई-न-कोई बात पड़ जाती थी।

छुट्टी खत्म हो गई। हुशनाकसिंह ने तांगा लाकर दरवाजे के सामने खड़ा करवाया। वीरांवाली को बांह से पकड़, तांगे में बिठाया और मकान की चाभियां जेब में रख लीं। दरवाजे पर लड़कियों के साथ खड़ी लाज तांगे में बैठी बेबस बुआ को और बुआ उसे आँसुओं से भरी आँखों से देख रही थी। तांगा आँखों से ओझल हो गया।

IV

"भाई साहब, लाज का क्या हुआ।"

"वीरां, हम तो तेरे पास अमानत छोड़ आये थे।"

एक साल और दो महीने गुजर जाने के बाद, सैंट्रल जेल मुलतान के मुलाकात वाले कमरे में बहन वीरांवाली का यह एक सवाल और भाई किशनसिंह का यह जवाब, बस कुल दो ही बाते थी जो उन्होंने एक घंटे की मुलाकात में की। इन दो बातों के बाद दोनों तरफ चुप्पी और कभी-कभी तर आंखों से एक दूसरे की ओर देखना। दिल की बातें हैं, जिन्हें बेजबानी की जबान का कोई विद्वान ही बता सकता है। मुलाकात करवाने वाले अफसर ने वक्त खत्म हो जाने की घंटी बजाई। दोनों भाई-बहन एक दूसरे को चुपचाप देखते हुए अलग हो गए। अपनी मा-जायी से, यह आखिरी मुलाकात है, किशनसिंह को इस बात का क्या पता था।

जेलों में कैदियों का आना-जाना लगा रहता था। किशनसिंह को यह तो पता लग चुका था कि लाज अब लाहौर, तपेदिक के अस्तपाल में है, पर वीरांवाली उससे भी सख्त कैद में है, किशनसिंह को यह बात किसी ने नहीं बताई थी। छावनी मे तो पछी भी पंख नही मार सकता था, बागी भाई-भाभी और बागियों की बेटी के बारे मे वीरां को कौन खबर देता। वीरांवाली मुलाकात के लिए जेल तक कैसे पहुंच गई, इस भेद का आज तक किसी को पता नही चल सका। उसने अपनी जान खतरे में डाली, अपने पति हुशनाकसिंह से यह भेद छिपाए रखने में उसे सफलता मिली, लेकिन भाई की अमानत में खयानत हो जाने की मजबूरी का सदमा वह सहन न कर सकी।

हुशनाकसिंह ने असली बीमारी की ओर ध्यान न दिया, दूसरी दवाओं से क्या होने वाला था।

मरन कौर की कैद पूरी हो गई। वीरांवाली ने अमानत मे खयानत की दोषी होकर भाभी के सामने पेश होने से पहले ही सदा के लिए रिहाई पा ली।

सरन कौर सीधी लाहौर अस्पताल में पहुंची। बड़ा फाटक बंद था। दरबान ने कहा, "यह मरीजों के आराम का वक्त है, इस समय अन्दर जाना मना है।" दरवाजे के बायें कोने में मेहतरों का घर था। अनजान सी खादी-धारी स्त्री को देख कर जमादारिन पास आ गई। उसने पूछा, "आपको किससे मिलना है?"

सरन कौर चाहती ही थी कि उससे कोई सवाल करे। उसने कहा, "मेरी लड़की दाखिल है यहां, लाज!"

जमादारिन ने वार्ड के कमरे का नम्बर पूछा और साथ ही यह कहा, "हमने तो इस नाम के किसी मरीज़ का नाम नही सुना, मैं हर रोज हर एक वार्ड में सफाई करने जाती हूं।"

सरन कौर ने कहा, "मुझे तो वार्ड का पता नहीं, न ही कमरे का नम्बर मालूम है, सुना है कि मेरी लाज इस हस्पताल में है ।"

"सुना है आपने, खुद उसे यहां दाखिल नहीं करवाया ?" जमादारिन ने हैरान होकर पूछा ।

"नहीं, हम जेल में थे, हमारे पीछे वह बीमार हो गई ।"

"वही बागी की बेटी होगी ।" जेल का नाम सुनकर जमादारिन ने कहा, यहां उसके लाज नाम का किसी को पता नहीं, पतली, गोरी-सी, बारह-तेरह सालों की लड़की है । बड़ी प्यारी बातें करती है । उसकी बातें सुनकर कभी हंसी आ जाती है, कभी रोना । वह अपनी बुआ के पास थी ?"

सरन कौर ने हां में सिर हिलाया ।

"बस वही है । जब वह पहले यहां आई तो उसने किसी लड़की से पूछा, बागी किसे कहते हैं, और फिर आप ही बताया कि मेरे फूफा जी बुआ से कहते थे, तू बागियों की बेटी को घर में क्यों लाई । उसी दिन से उसका नाम बागी की बेटी पड़ गया । जब भी डाक्टर आता है, वह कहती है, मुझे मेरे पिताजी और माता जी के पास जेल में ले चलो । डाक्टर सुन कर हंस देता है ।"

जमादारिन की बात सरन कौर बुत बनी सुनती गई ।

जमादारिन ने पूछा, "सरदार जी नहीं आये ?"

"उनकी सजा तो अभी आधी भी खत्म नहीं हुई । उन्हें तीन साल की कैद हुई थी ।"

सरन कौर की बात सुन कर जमादारिन ने ठंडी सांस लेकर कहा, लड़की बड़ी सयानी है । उसने बताया कि उसका फूफा बुआ को लेकर चला गया । मैं बाहर दरवाजे के आगे बैठी दहलीज़ पर ही सो गई । सरदी से मुझे बुखार चढ़ गया । फिर मेरे पिताजी के एक दोस्त मुझे अपने घर ले गये । जब मैं बहुत बीमार हो गई तो वे मुझे यहां छोड़ गए । मैंने बहुत कहा कि मुझे जेल ले चलो, पर वे नहीं ले गए ।"

इतनी बात बताने के बाद जमादारिन ने कहा, "अब तो बस वह आप का ही इंतजार कर रही है ।"

जमादारिन के अंतिम वाक्य का भाव सरन कौर समझ गई थी । लाज के कमरे में पहुंचने तक उसके सब आँसू बह चुके थे ! अपनी मां को देखकर लाज की आंखें फैल गई । सुबह के दीपक की यह आखिरी झिल-मिल थी ।

खुदा का घर

जसवंतसिंह ने दरवाजे की झिरी में से खून से भरा सीता का दुपट्टा कृपाण की नोक से बाहर फेंक कर कहा, "हम सिख लड़ना भी जानते हैं और मरना भी। जब कोई जिंदा तुम्हारे हाथ लगेगा तभी तो मुसलमान बनाओगे न।"

"क्या इस्लाम खराब मजहब है ?"

यह आवाज सुन कर जसवंतसिंह ने कहा, "नही, खराब तो नही, पर अब तुम क्या साबित कर रहे हो ? अगर मुसलमानों का काम पड़ोसियों को लूटना और कत्ल करना ही है, तो फिर इस्लाम की अच्छाई लोग कैसे जानेंगे।"

"ठेकेदार। पूरे कुनबे के साथ दरवाजे से बाहर आजा, मुसीबत न बुला अपने लिए, और अपने छोटे-छोटे बाल-बच्चों के लिए, मस्जिद में चल कर अभी तो इतना ही कहना है, 'हम मुसलमान हुए' कुछ और नही करना है, फिलहाल !"

यह परिचित आवाज थी, जसवंत सिंह अभी कुछ जवाब नही दे पाया था, कि फिर उसी परिचित आवाज ने कहा, "कोलियां, गंगावाला, बन्तोल, झण (झंड), संगराज (संगराला) मुजाहिद (मजाहद), मरोबर, तलराल, चकेबली (चकेहली) वगैरा सब गाँवों ने इस्लाम कबूल कर लिया है, तुम मर कर हमारे सिर गुनाह मत चढ़ाओ, तू तो बड़ा सयाना आदमी था, क्यों अपने कुनबे के सत्यानाश पर तुला है ?"

"असली इस्लाम तो मैंने माना ही हुआ है, सिख और इस्लाम मजहब में मैं कोई फर्क नही समझता, लेकिन इस इस्लाम को तो मैं नही मानता, नूरा, जिसकी झलक तुम दिखा रहे हो।"

जसवंतसिंह ठेकेदार मास्टर संतसिंह—उसका बड़ा भाई, डाक्टर भगत सिंह—उसका भतीजा, सोहन सिंह—उसका छोटा भाई, रुक्मिणी देवी उसकी माता, सीता—उसकी पत्नी और सबके परिवार, सभी बाल-बच्चों सहित कुल मिला कर कोई पैंतीस प्राणी, ढेरी गान के एक मुसलमान हयात मुहम्मद के कच्चे से मकान में बन्द है। मकान को सशस्त्र भीड़ ने घेरा हुआ है। इस मकान में बन्द होने से पहले, ये अपने मकानों को जलता हुआ देख चुके हैं। यह कच्चा मकान हयात मुहम्मद की हवेली है। हयात मुहम्मद, जसवंतसिंह की बांह पकड़ कर ले आया था और कहता था, "मेरी लाश पर पांव धर कर ही कोई आपकी तरफ आँख

उठायेगा।" मास्टर संतसिंह के यहाँ घर में जो नकद या गहने-जेवरात थे, वह उसने अपने मित्र नूर मुहम्मद के हाथ में, अमानत के तौर पर थमा दिये थे। जसवंतसिंह ने उसी समय कह दिया था, "यह अमानत हमारी मौत का कारण बनेगी।"

नूरा ने एक बार फिर सारी भीड़ को सुना कर कहा, "ठेकेदार, तू अपने कुनबे को ही नहीं मरवायेगा, ये बलवाई (हमवतन) मेरे बीवी बच्चों की भी बोटी-बोटी कर डालेंगे। ये लोग कह रहे हैं—छोटे-मोटे गाँव तो सब मान गए हैं। लेकिन चौंतरा, अधवाल, चक्करी और पड़ियाल—ये बड़े गाँव अड़े हुए हैं, अगर ढेरी का यह ठेकेदार मान जाये तो फिर मुआँ का सारा इलाका एक कौम हो जायेगा।"

जसवंतसिंह ने कुछ कहा, लेकिन उसकी आवाज़ बच्चों की चीख-पुकार में खो गई। संतसिंह और भगतसिंह ने बच्चों की गरदन पर कृपाण चलाना शुरु कर दिया।

जसवंतसिंह ने फिर एक लड़की की खून से भरी चूनर दरवाजे की झिरी में से बाहर फेंकी, और इसके साथ ही अपने भतीजे के भाई को रोका। जसवंतसिंह इस तरह जल्दबाज़ी में बच्चों को ख़त्म कर देने के पक्ष में नहीं, लेकिन संतसिंह और उसका बेटा भगतसिंह, दोनों, बड़े जहरीले और गुस्सैल हैं। आखिर फैसला हुआ कि सयाने बच्चों में से जो आप मरना चाहे, उसे बेशक मौत के घाट उतार दिया जाए लेकिन इस समय सबने मरने की इच्छा प्रकट की। खून से लथपथ चूनर को देख कर भीड़ के व्यवहार में तो कोई अंतर नहीं आया, लेकिन ढेरी के मुसलमान कुछ सोच में पड़ गये, कुछ तो बीच में से खिसक भी गए।

ढेरी के मुंशी नवाब खान ने सारे मजमे [उत्तेजित भीड़] को संबोधित करके कहा, "मैं इस ठेकेदार को बड़े ज़माने से जानता हूँ, इसमें ज़रा भी तआज्जुब नहीं है, ये तो खुद हमारी मस्जिदों में जा जा कर वाइज़ करता था कि सारे एक खुदा के बंदे हैं, इत्तफाक से [मेल-जोल से] रहें। चलो दूसरे गाँव चलें, इसे मेरे जिम्मे छोड़ दो, मैं लौट कर संभाल लूँगा।"

"छोड़ो इन सुअरों की बातें", मुंशी की बात सुन कर भीड़ में से एक आदमी ने कहा। इसके हाथ में लंबा-सा नेज़ा [भाला] था। वह दूसरों को ललकारता हुआ छत पर जा चढ़ा। उसके पीछे और भी आदमी छत पर पहुँच गए और सबने मिल कर छत को खोदना शुरू कर दिया। भीड़ में से एक और आदमी जो लिबास से [पहनावे से] बड़ा नमाज़ी और मौलवी जैसा प्रतीत होता था, दरवाज़े के निकट आया। जसवंतसिंह उस समय दरवाजे की झिरी में से झाँक रहा था। इस आदमी ने भीतर की ओर झांकते हुए कहा, "सरदार जी। आप रब्ब की बनाई

सूरतों के टुकड़े करके क्यों फेंक रहे है। क्या मालूम इन लड़के-लड़कियों में किस की रुहें बैठी हैं।"

मौलवी की बात सुनकर जसवंतसिंह ने गंभीरतापूर्ण अट्टहास करते हुए कहा, आप ये नेज़े [भाले], कुल्हाड़े और दुनालियां किस लिए उठाए फिरते हैं ? जिन पर इनसे वार कर रहे हैं, क्या वे रब्ब की बनाई सूरतें नहीं है ?"

"खुदा की कसम, मेरे हाथ में कोई शै [चीज़] नही। मैं तो बस यही चाहता हूँ कि रसूल-अल्लाह की उम्मत बढ़े," मौलवी ने अपने दोनों [खाली] हाथ झटकते हुए कहा।

"यह क्या अच्छा तरीका है उम्मत बढ़ाने का", जसवंतसिंह की बात सुनकर मौलवी ने धीरे से कहा, "अपने ही पड़ोसी हैं ये तुम्हारे, पुरानी रंजिशें पाले हुए और ज़ाहिर यह कर रहे हैं कि बिहार का बदला चुकायेंगे। खुदा जाने, हमें तो यह भी खबर नहीं कि बिहार है किस तरफ ?"

"तो फिर आप अपने हम-मज़हबों [समान धर्मवालों] को वाइज़ करें। हम तो किसी का कुछ नहीं बिगाड़ते।" जसवंतसिंह की बात सुनकर मौलवी फिर बोला, "मेरा तो एक ही काम है; जो खुदा के घर मे अपनी खुशी से आना चाहे, उसे रसूल का कलमा पढ़ा देना. किसी और काम मे हमारा कोई वास्ता नही ; मैं तो अपना घर-बार, छोड़ कर मियांवाली से इसी नेक काम के लिए दौड़ा आया हूँ।"

खुदा का घर आप किसे कहते हैं ?" जसवंतसिंह का सवाल सुन कर मौलवी पहले तो कुछ सोच में पड़ गया, फिर कहने लगा "जहाँ रसूल के पैरोकार इकट्ठे हों, मस्जिद को हम अल्लाह का घर समझते है, तुम्हारी मर्जी हो तो चलो रसूल का कलमा पढ़ो और उसकी रहमतों के हक़दार बनो।"

जसवंतसिंह ने कहा, "नहीं, हम नही जायेंगे। हम आपकी तरह सिर्फ मस्जिद को ही खुदा का घर नहीं समझते। हमारे मज़हब के मुताबिक ये सारे बंदे रब्ब के बनाये हुए है, और वह खुद हर-एक के अन्दर बसता है। इस वास्ते बंदे का जिस्म ही रब्ब का घर है। अल्लाह के इस असली घर को तो तुम गिराते फिराते हो और इंसानों की बनाई ईंट-पत्थर की इमारतों को तुम रब्ब का घर कहते हो।"

मौलवी ने कहा, "तो फिर आप मेरी पहली बात का ही जवाब दें, इन छोटे-छोटे बच्चों को आप अपने हाथों कत्ल क्यों कर रहे हैं ?"

जसवंतसिंह ने कहा, "मैं तो इस बात का हामी नहीं, मेरा भाई और भतीजा ही घबरा कर ऐसा कर रहे हैं, मैं तो लड़कर मरने को ही मर्दानगी समझता हूँ। यह दुपट्टा और चूनर तो मैंने इसलिए बाहर फेंके हैं कि आप को पता लग जाए

कि हम मरने से नहीं डरते । हमने जो धर्म धारण किया है [अपनाया है]; हमारा घर-बार चाहे कोई लूट कर ले जाए, हमारा धर्म हमसे कोई छीन नहीं सकता, जब तक हमारी जान में जान है ।"

"नहीं, इस्लाम किसी से ज़बरदस्ती कलमा पढ़वाने की इजाज़त नहीं देता ।" मौलवी ने बहुत धीमे से यह बात कही ।

आज रावलपिंडी का तमाम शहर ही एक सराय बना हुआ है, कोई घर, कोई मुहल्ला, कोई मंदिर, कोई गुरुद्वारा ऐसा नहीं होगा, जिसमें से पीड़ितों [दुखियों] की चीख-पुकार और बच्चों के रोने-चिल्लाने की आवाज़ें न आ रही हों । छावनी के खुले मैदान में हज़ारों तम्बू लगे हुए हैं, सहमे और घबराये हुए लोग अपनी आपबीती सुना रहे हैं । 13 मार्च, 1947 का दिन है । पंडित जवाहर नेहरू का विमान घंटा-सवा-घंटे की बजाय चार घंटों में लाहौर से रावलपिंडी पहुँचा । हवा में उड़ता हुआ यह जहाज़ आग की लपटें और धुंआं ही देख सका । लेकिन रावलपिंडी की धरती पर आज यतीमों, विधवाओं और अविवाहित माँओं की आहें, जलते हुए मकानों के धुंएं से ज्यादा दर्दनाक दृश्य प्रस्तुत कर रही हैं । पंडित जवाहरलाल अपने साथियों के साथ जब दीवान पिंडीदास की कोठी में पहुंचे तो कोठी फरयादियों से भरी हुई थी । पंडित जी ने उनके साथ आए चमनलाल और गुरुमुखसिंह से कहा "सबके दुख-दर्द की कहानी नोट करो । थोड़ी देर में ही पता चल गया कि दुख की इन कहानियों को नोट करने की किसी कलम में सामर्थ्य नही । शहर का चक्कर लगा कर पंडित जी ने बड़े कैम्प में जाने की असमर्थता प्रकट की । वे अधिक समय तक अपने आँसुओं को रोक न सके । चमनलाल और गुरुमुखसिंह इस क्षेत्र के ही रहने वाले हैं । ये जिस से भी मिले, वह गले लग कर फूट-फूट कर रोया । अकाल गढ़ गुरुद्वारे के आंगन में प्रवेश करके, कोने वाली कोठी में जब गुरुमुखसिंह ने झांका तो बहुत-से लड़के-लड़कियां रोते-चिल्लाते उनसे चिपट गए । ये सब ढेरी के जसवंतसिंह परिवार के बचे हुए अभागे सदस्य थे । सोहनसिंह ज़रा दूर बैठा था, उसे जरा कम दिखाई देता था । निकट आकर, उसने गुरुमुखसिंह को पहचाना । बेहोश-सा होकर जड़वत सा वह गुरुमुख के पास ज़मीन पर बैठ गया । "प्रेम का कोई पता चला ?" सोहनसिंह के पूछने पर गुरमुखसिंह ने कहा, "हवाई जहाज़ में जगह नहीं थी, कल आयेगा" "उसे कुछ मालूम है" गुरुमुखसिंह ने कहा, "मुझे भी यहां आकर इतना कुछ पता चला है कि आप-सब हयात की हवेली में घिरे हुए थे और मुसलमान हो जाने के लिए आप पर ज़ोर दिया जा रहा था, प्रेम को तो इतना भी मालूम नहीं, लाहौर में ये सब कौन बताता ?" सोहनसिंह ने ठंडी सांस भरकर कहा, भाभी सीता को तो बड़े भाई संतसिंह ने सब से पहले कृपाण से पार उतारा, भाभी ने कुछ ढीली-सी

बात की थी । डाक्टर भगतसिंह, आपने देखा ही होगा उसे, बड़े भाई संतसिंह का बड़े से छोटा बेटा, पिछले साल डाक्टरी के इम्तिहान में अव्वल रहा था, बदकिस्मत, दो दिन पहले घर छुट्टी पर आया था, उसे मौत ही ले आई । बेटा, बाप की तरह जोशीला था, उसने अपने दोनों बच्चे पहले झटके में ही कृपाण को भेंट चढ़ा दिए । नैनो और तेज—ये लड़कियाँ कोनों में जा दुबकीं । घायल हुई पर बच गईं । जसवंतसिंह से बहुत देर तक तकरार होती रही । आखिर जालिमों ने छत ऊपर से तोड़ डाली हम सुबह से ही हयात की हवेली में बंद पड़े थे । शाम हो गई थी, जब छत फाड़ कर उन्होंने मिट्टी का तेल नीचे गिराया । जसवंतसिंह ने भीतर से किवाड़ खोल दिया । बूढ़ी माँ को नमस्कार करके, कृपाण घुमाता हुआ, कूद कर वह अन्दर से निकला । बाहर दरवाज़े के पास छिप कर खड़े जालिमों ने जसवंतसिंह को बरछों से बींध डाला । बड़े भाई संतसिंह ने भी इसी तरह किया । उसका शरीर ज़रा भारी था । वह बड़ी दृढ़ता से आगे बढ़ा, जसवंतसिंह की लाश पर गिरने की धुंधली सी झलक मुझे दिखाई दी । इसके बाद भगतसिंह, दौड़ता हुआ भीड़ में घुस आया और कइयों को ज़ख्मी करके शहीद हो गया ।

इस समय भी नूरा, माता जी से कह रहा था, शाहनी ! तुम तो कलमा पढ़ लो । छाती पीटती हुई शेरनी ने उत्तर दिया, मेरे शेर-बेटे तुम लोगों ने मार डाले, अब मैं क्या कलमा पढ़ूं । माता जी की दोनों हाथों से छाती पीटने की आवाज़ मुझे आई । मेरी नज़र कमज़ोर हैं, ये लड़कियाँ बताती हैं कि तीनों लाशें इकट्ठी पड़ी थीं और माता जी उनके उपर जाकर गिरीं । पत्थर मार-मार कर माता जी के शरीर को कुचल दिया गया । फिर हमने अपने जल रहे पुश्तैनी मकान की ड्योढ़ी में जा कर सिर छिपाया । लोगों को मस्जिद में ले जाकर कलमा पढ़ाने की आवाज़ें हमारे कानों में पड़ती रहीं । हम सोच रहे थे कि अगर हमें मस्जिद जाने के लिए कहा गया तो अपने जलते मकान में छलांग लगा देंगे । सुबह-सुबह फौज के जवान आ गए और हमें यहाँ ले आए ।

गुरुमुखसिंह जड़वत सोहनसिंह की बात सुनता रहा । आखिर गहरी उदासी की तसवीर बना, साँस भरते हुए गुरुमुखसिंह ने कहा, "प्रेम पहले ही कहता था, अगर कभी ऐसा मौका आ पड़ा तो बड़े भाई जरूर आग में छलांग लगा देंगे ।"

प्रेमसिंह 'प्रेम' जसवंतसिंह का सबसे छोटा भाई था, लाहौर में वकालत करता था, दूसरे दिन वह भी आ गया । गुरुमुखसिंह ने हवाई अड्डे पर ही सारी दुखभरी बात बता दी । शहर पहुँचने तक वह गम के आँसू पी चुका था । उसे अनुभव हुआ कि अब अट्ठाईस प्राणियों को संभालने का बोझ उसके कंधों पर है ।

गुरुमुखसिंह को खबर मिली कि उसका छोटा भाई और भाभी सरोबा गाँव में फँसे हुए हैं ।

तीन-चार दिन फौज के जवान मिलने में लगे। प्रेम, ईशरसिंह और गुरुमुख-सिंह तीनों सरोबा पहुँच, मिलिट्री की मदद से गुरुमुखसिंह के भाई-भाभी को लेकर ढेरी के रास्ते से वापस लौटे। ढेरी पहुँच कर वे हयात की हवेली के सामने ज़मीन पर ही बैठ गए। नूरा ने तीन चार बोरियाँ प्रेम के आगे लाकर रखीं और कहा कि आपकी अमानत हैं। प्रेम अपने ही ध्यान में मग्न था। आप ही आप, उसका दांया हाथ ज़मीन पर रेखाएँ खींच और मिटा रहा था। ईशरसिंह ने देखा, एक बोरी में कुछ बरतन हैं, दूसरी में सूत की कुछ लड़ियां, तीसरी में मक्का के भुट्टे और चौथी में तीन चार खादी के लत्ते।

"नूरा, रख ले अपने ही पास ये अमानत, अपने दोस्तों की यादगार। अट्ठाईस जीवों की देख-रेख और पालन-पोषण हमें उन बिछुड़ी रूहों की याद हमेशा दिलाती रहेगी।

प्रेम कमर पर हाथ रखकर उठा और सब लोग गारद के साथ लारी में बैठ गए।

हिन्दू पानी—मुसलमान पानी

तब मैं डायरी नहीं लिखा करता था, तारीख, महीना याद नहीं, सन् 1931, बूँदा-बाँदी के दिन थे। जत्थेदार मोहनसिंह ने कहा, जब यहाँ तक आए ही हुए हैं, चलो अधवाल भी हो आएँ। भगतसिंह की दोनों बेटियों के विवाह पर हम अमृतसर मे दरकाली आए थे और यहाँ से अधवाल मुश्किल मे तीन-चार कोस था। मौलवी हरनामसिंह की भी इच्छा थी, पर उसे वडाला के बहा ले जाने वाले पानी से डर लगता था। भगतसिंह ने पड़ोसियों मे घोड़ी मँगवा दी, घोड़ी को लौटा लाने के लिए नाई को साथ भेजा। हम तीनों जने चल तो पड़े, पर मौलवी हरनाम सिंह बार-बार पीछे की ओर देख रहा था। भगतसिंह की माँ ने भी चलने समय उन्हें रोकने के कई हीले किए। बादल गरज रहे थे। वडाला में और पानी चढ़ आने की आशंका थी। नाई भी कहता था, शाह जी, सुबह चलिएगा, अब वक्त ज्यादा हो गया है और ऊपर मे घटाएँ घिर रही हैं।"

जत्थेदार मोहनसिंह ने नाई से कहा, "तुझे वापस लौटने की चिन्ता है।" नाई ने बेधड़क होकर कहा—"आप क्यों कहते हैं शाह जी, भगतू शाह के मेहमानों के लिए तो चाहे मेरी जान चली जाए, हमारा तो जीना मरना उनके साथ जुड़ा है। अल्लाह की कसम, अगर भगतू शाह कहें तो इसी वक्त जूती उतार, कमर कस कर, रावलपिंडी जाने के लिए दौड़ पड़ूँ, अधवाल तो दूर ही कितना है ?"

दुविधा में पड़े मौलवी हरनामसिंह को, जत्थेदार मोहनसिंह ने पकड़कर घोड़ी की पीठ पर बिठा दिया, मेरा छोटा-सा कैनवास का थैला नाई ने पकड़ लिया। वहाँ से कूच करके हम थोड़ी ही देर में वडाला के किनारे आ रुके। मोहनसिंह को वडाला के पानी की पहचान नहीं थी ; उसे मालूम नहीं था कि इसका पानी चाहे गहरा नहीं होता लेकिन इसका बहाव बहुत तेज होता है। हमारे देखते-देखते ही जत्थेदार वडाला को पार करने के लिए धारा के ठीक बीचों-बीच पहुँच गया। उपर से वर्षा का नया पानी और आ रहा था। जत्थेदार ने पानी से बहुत कुश्ती की, लेकिन उसकी जोर जबरदस्ती यहाँ चल नहीं सकी। बहा कर ले जाने वाले पानी ने उसके पाँव चिकने पत्थरों पर से फिसला दिए।

मौलवी हरनामसिंह घोड़ी की पीठ पर बैठा-बैठा दुहाई दे रहा था। मैं हैरानी से देख रहा था। हमारे अलावा वडाला के तट पर दो नवयुवक और खड़े

थे, जो पहले तो खिलखिला कर हँसते रहे, फिर अचानक गंभीर हो गए, और तुरंत पानी में कूद पड़े । शरणाही से तैरते हुए एकाएक उन्होंने जत्थेदार को जा थामा । जत्थेदार घबराया नहीं था, उसने एक बड़े पत्थर से अपना पाँव अटका लिया था, लेकिन पानी पल-पल बढ़ता जा रहा था । शरणाही के तीनों जवानों ने पहले जत्थेदार को दूसरे किनारे पर पहुँचाया और फिर आकर हमें भी दूसरे किनारे तक ले गए । घोड़ी और नाई को हमने इस किनारे से वापस लौटा दिया । जत्थेदार ने मशकों वाले जवानों को कुछ इनाम देना चाहा, पर उन्होंने एक स्वर में किसी तरह का पुरस्कार लेने से इंकार करते हुए कहा, "हम कोई ऐसे गए-बीते है, जो मेहमानों से पैसे वसूल करे, आप हमारे साहूकार के यहाँ आए है, आपकी जगह हमारे सिर माथे पर है । आप कहें तो अपने कंधो पर बिठाकर आपको छोड़ आएँ । अपने-पराये को हम दूर से पहचान लेते हैं । पैसे देने का नाम न लें । अल्लाह का दिया बहुत कुछ है, हसरतों से कभी पेट भरता है । नाई ने बताया, आप अमृतसर से आये है । हमारे साहूकार भी दीवाली पर अमृतसर जाया करते है, जिआरत के लिए । आपके वडाला पार कराने के लिए हम इनाम ले, तो आप उधर जाकर क्या कहेंगे कि यहाँ आदमी बसते है या सूअर ? अब जल्दी कीजिए और बादल आ गए तो परेशान होना पड़ेगा । पांयचे चढ़ाइए, जूते हाथ में पकड़िए और चल पड़िए । हम जब चलने लगे तो जत्थेदार के भीगे हुए कुरते की ओर इशारा करके उन्होंने कहा, "इसे उतार कर, निचोड़ कर कंधे पर डाल लें और पायजामा घर पर जा कर पहन लेवें ।"

जत्थेदार ने कहा, "मैं गर्मियों में पायजामा पहनता ही नही ।"

"अच्छा घुटने नंगे ही रखते हैं ?" उन्होंने कुछ हैरानी से अजीब से लहजे में कहा ।

11

'साईं सबका रखवाला' ये स्वागती शब्द जो पिता जी ने हमारे घर के आंगन में पाँव रखते समय बोले, मेरी स्वर्गीया माता जी बोला करती थी । सूरज डूब रहा था । ड्योढ़ी में नाँद के खूँटे से भैंस को बाँध कर पिता जी उसकी पीठ पर हाथ फेर रहे थे ।

हम तीनों बाहर के दरवाजे से अन्दर आए ।

"आओ जी, आओ जी, जत्थेदार जी, मौलवी साहब !"

"लाला जी, यह तो मजाक में मुझे मौलवी कहते हैं, आप भी ठट्ठा करने लगे हैं ।" हरनामसिंह की बात सुनकर पिता जी ने कहा—"जत्थेदार जी तो वैसे ही हर समय हँसते रहते हैं ।" पिता जी की बात सुनकर हम सब हँस पड़ें ।

हरनामसिंह की दाढ़ी मौलवियों जैसी थी, और जत्थेदार के दांत इस तरह बाहर निकले हुए थे जिससे वह हर समय हँसता ही दिखाई देता। पिता जी का संकेत इसी ओर था। दालान में बिछी पटसन की खाट पर बैठते हुए हरनामसिंह ने कहा, "लाला जी, आज तो जत्थेदार प्रियतम के देश ही रवाना हो चले थे अगर दो मशकी न आ गए होते तो।" चेहरे पर आई चिन्ता को पिता जी ज़बान पर लाने ही को थे कि जत्थेदार बोल उठा, "लाला जी का मुर्गा खाने के लिए प्रियतम के देश जाते-जाते लौट आए।" जत्थेदार की बात सुन पिताजी की चिन्ता का रुख बदल गया।

"इस वक्त मुर्गा।"

"लाला जी, आज जत्थेदार ने वडाला के पानी से कुश्ती शुरू कर दी, इसने समझा यहाँ भी इसकी ज़ोर-ज़बरदस्ती चल जायेगी," हरनामसिंह ने बात टाल दी थी लेकिर जत्थेदार ने भी फिर कह दिया : "यह सब कुछ मुर्गे के लिए था।"

"यार, इस वक्त उसे बनायेगा, पकायेगा कौन ?" पिता जी की बात सुनकर हरनामसिंह ने कहा—"लाला जी। छोड़िए, इस वक्त जो कुछ भी बना है, खा लेंगे।" पर जत्थेदार ने जरा सा घूर कर, अपने हँसने वाले दाँतों पर जीभ फेरते हुए, मौलवी से कहा, "मौलवी बड़ा सुस्त आदमी है। माई सेवा बाज़ार में किताबों की दुकान पर बैठ-बैठ कर उसकी हड्डियों में पानी भर गया है, लाला जी। मुर्गे का क्या है—मिनटों में बना-पका लेंगे।" मौलवी फिर भी बुड़बुड़ाता रहा। जत्थेदार उतावला-सा, मगर चुपचाप दाँतों को होठों के नाचे दबाये पिता जी की ओर देख रहा था।

"बख्तां, ज़रा बात सुनना।"

"आई, भाई जी।"

छत की मुंडेर पर खड़े होकर पिता जी ने ऊँची आवाज़ लगाई और बख्तां का जवाब सुन कर नीचे आ गए।

"कोई चूज़ा है क्या ?"

"बख्तां सामने आई, तुरंत पिताजी की आवाज़ उसके कानों में पड़ी।" कितने-सारे घूम रहे हैं, भाई जी।" यह कहकर उन्हीं कदमों वह लौट गई।

"चलो, खुद ही जाकर पकड़ लाते हैं, बखतां का घर कौन-सा दूर है ?" बात अभी जत्थेदार के मुंह में ही थी कि बख्तां दोनों हाथों में एक-एक मुर्गा पकड़े हुए आ गई।

"लो भाई जी। आप ही इन्हें बनाये-तैयार करें, हमारे बनाये-तैयार किए हुए तो आप खायेंगे नहीं। हाय अल्लाह (जीभ दाँतों से काटते हुए) मैं भूल गई,
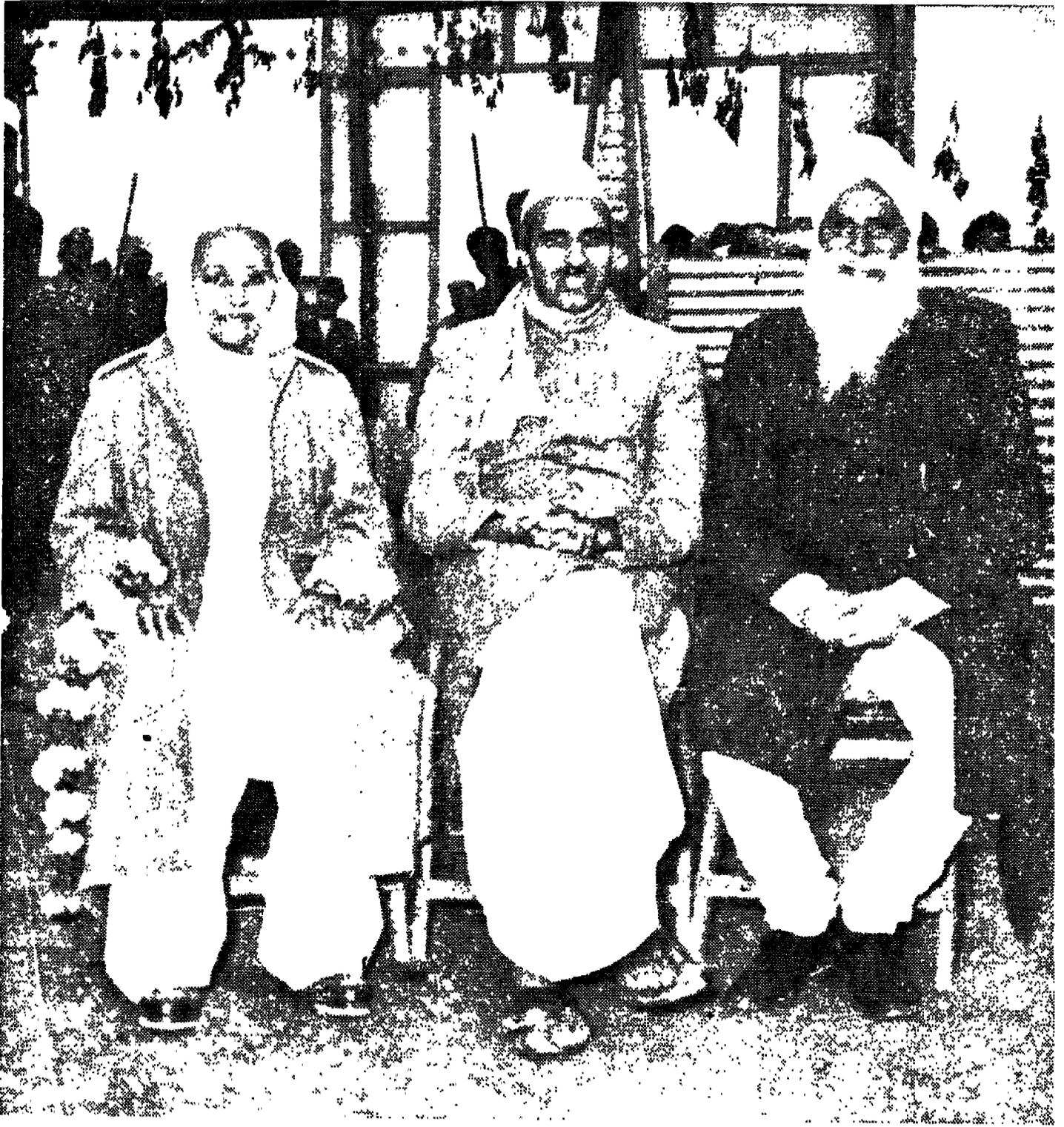
श्रीमती मुसाफिर और
यू० एन० ढेबर के साथ
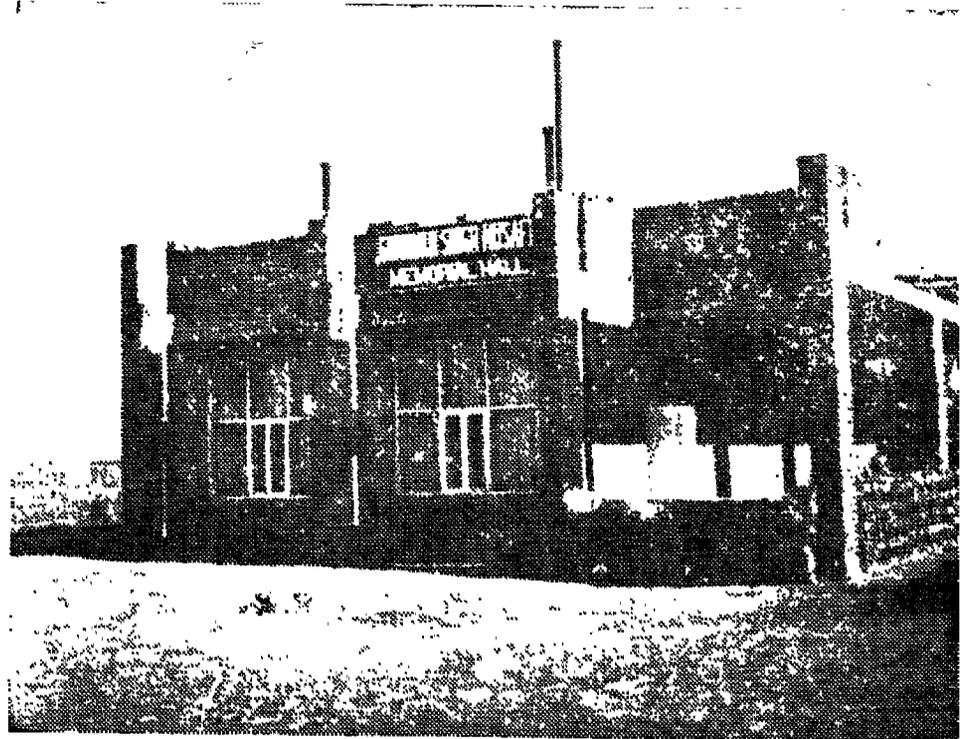
मुसाफिर मैमोरियल हाल,
चंडीगढ़

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को अपनी नव प्रकाशित पुस्तक भेंट करते हुए ।

सुबह का अखबार देख रहे हैं।

कवि मुसाफिर

संसद भवन जाने की तैयारी में ।

नाश्ता करते हुए।

केन्द्रीय पंजाबी सभा के मंच पर
सरदार गुरबख्शसिंह (प्रीत लड़ी) उनके बायें हाथ बैठे हैं।
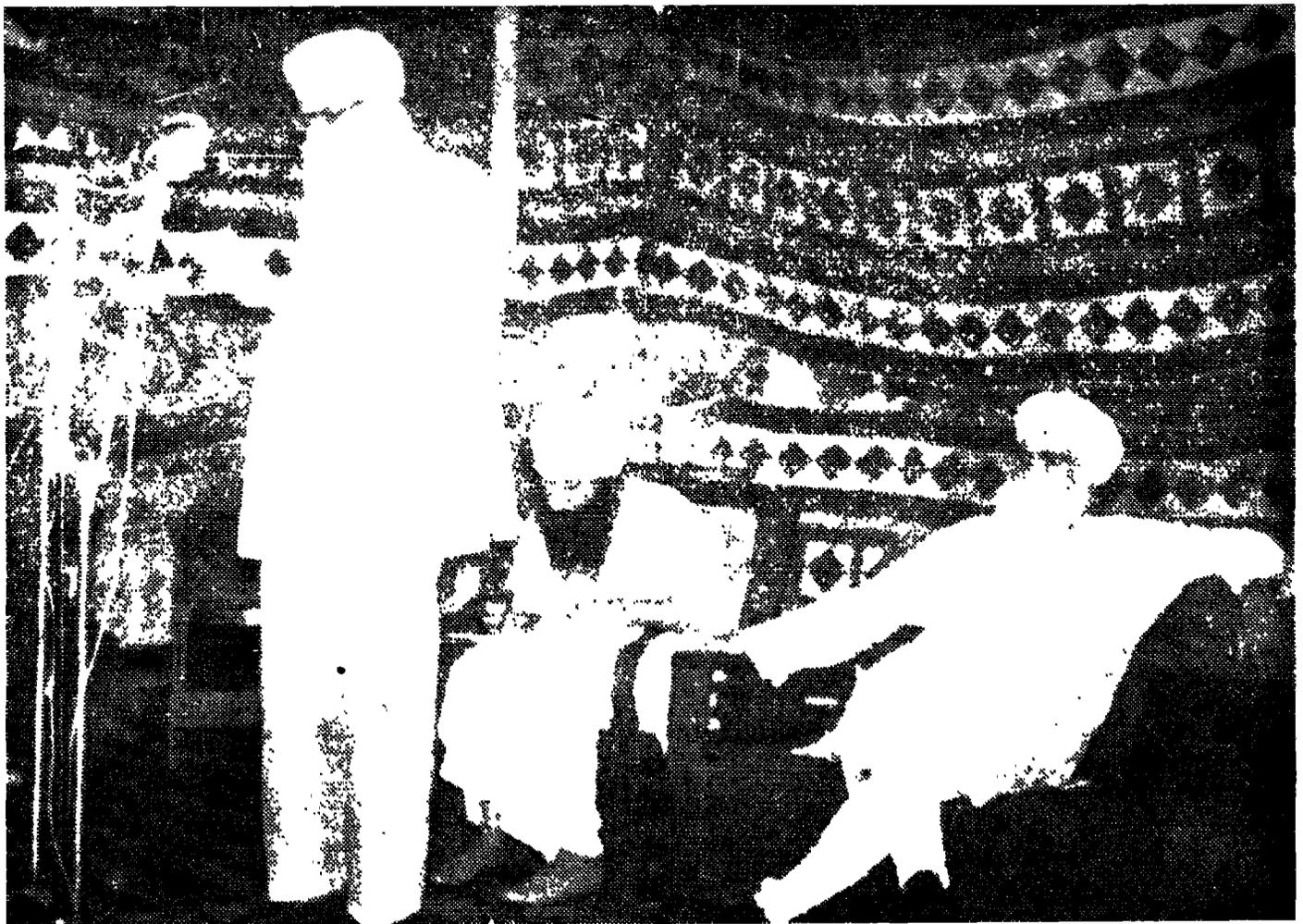
पंडित जवाहर लाल नेहरू और श्रीमती इंदिरा गांधी के साथ ।
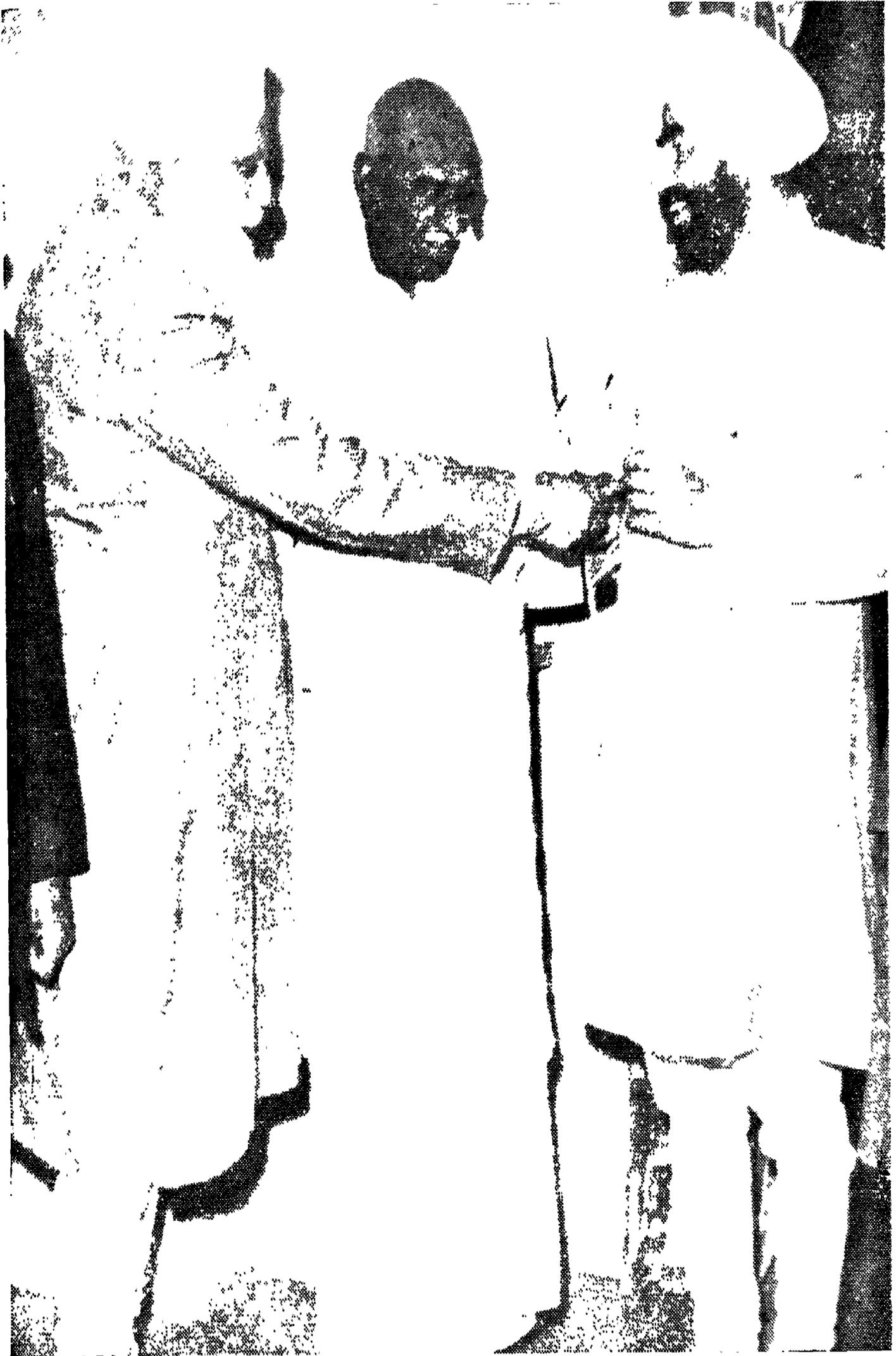
ज्ञानी जैलसिंह और कामराज के साथ ।

वरिष्ठ पत्रकार लाला जगत नारायण के साथ ।
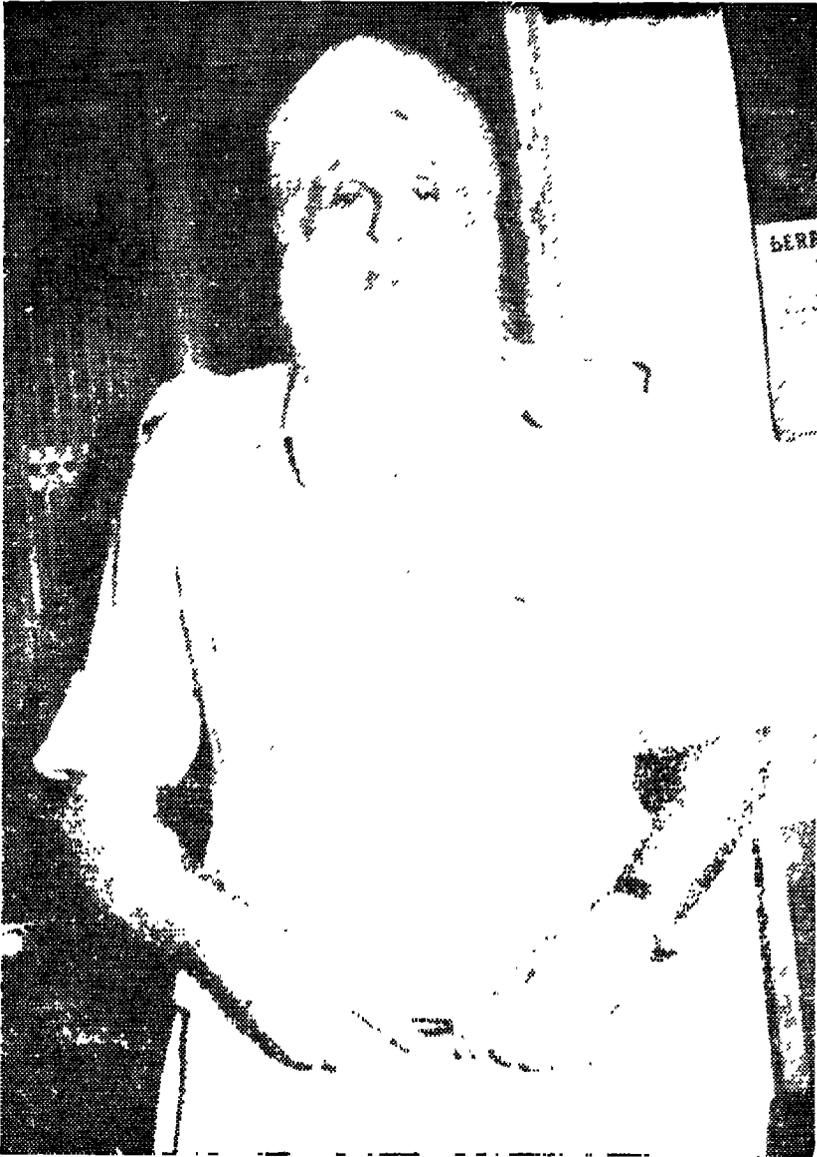
1965 के भारत-पाक संघर्ष में
सीमा क्षेत्र के दौरे पर

मास्टर तारासिंह
जी के साथ
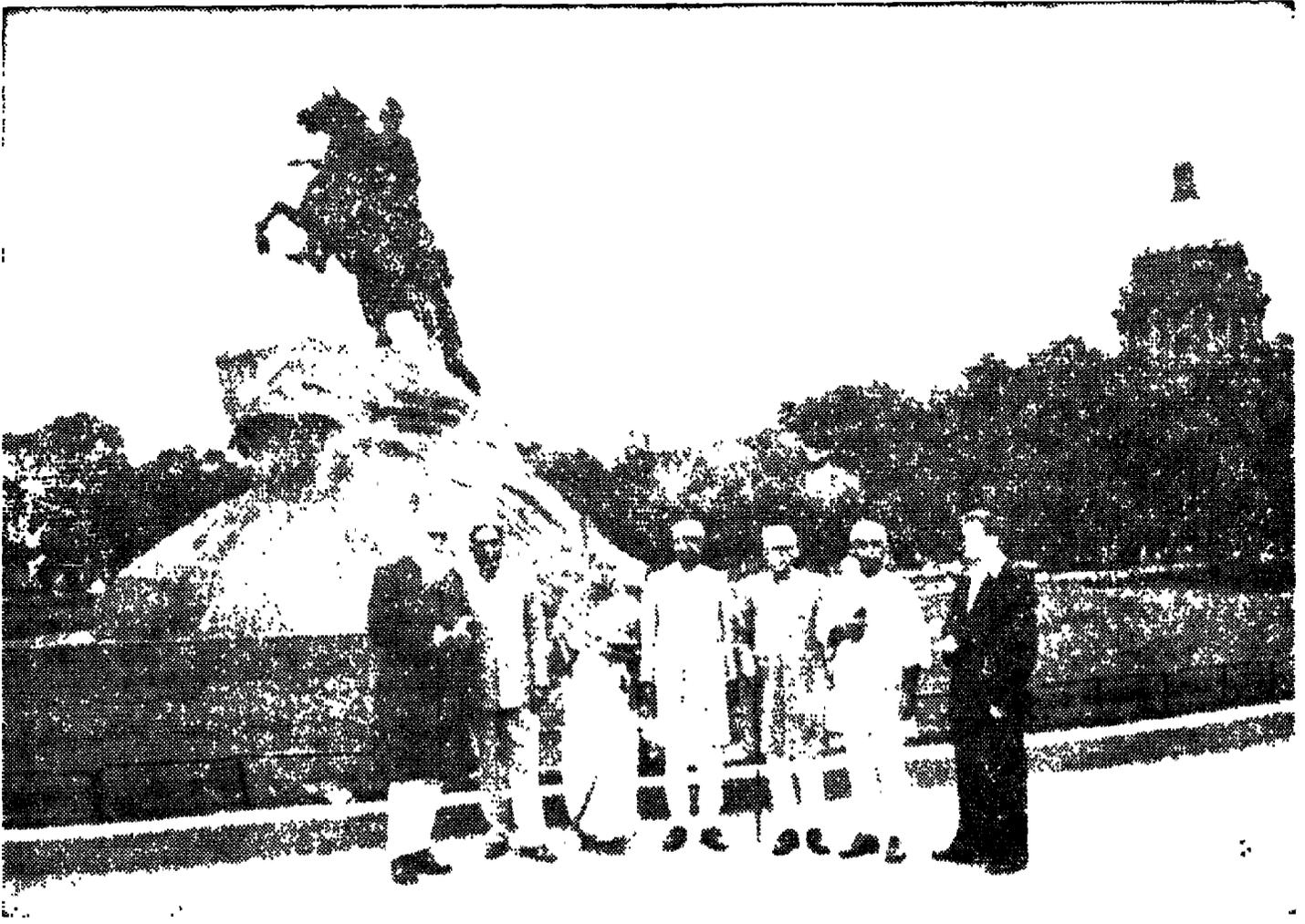
लेलिनग्राड में एक भारतीय प्रतिनिधि मंडल के साथ।

पंजाब के मुख्य मंत्री।

पंडित नेहरु और अन्य भारतीय नेताओं के साथ ।

डाक्टर जाकिर हुसैन और श्री लालबहादुर शास्त्री के साथ ।

अरदास में

और फिर वे चल बसे ।

वह गर्दन अलग करने को आप क्या कहते हैं, अरे हाँ···झटका करना हो तो कर लीजिए।"

हरनामसिंह कहता रहा, "दो का क्या होगा", पर जत्थेदार ने उसे मामूली-सी डाँट पिलाते हुए दोनों मुर्गे पकड़ कर कहा, "मौलवी का हाज़मा खराब है" जत्थेदार ने स्वयं ही मुर्गे काट-छील कर तैयार किए। मौसी ने मसाला घोंट लिया। मैं और पिताजी भी हाथ बंटाते रहे।

मौलवी चारपाई पर लेटा हुआ इंतजार करता रहा। भाग्यवती महरी ने रोटियाँ पकाईं। जत्थेदार ने रोटियों में कोई खास दिलचस्पी नहीं ली। मौलवी ने एक दो रोटी अच्छी तरह से सेंकने के लिए कहा। मैं बाहर से आते-जाते लोगों के सग बातों में लगा रहा। जत्थेदार को कइयों ने बारी-बारी से कहा, "जी, आप आराम से बैठें, हम अपने-आप सब कुछ तैयार करवाते हैं" लेकिन जत्थेदार को शायद विश्वास नहीं था कि उससे अच्छा कोई और व्यक्ति मुर्गा तैयार कर सकता है, वह चूल्हे के पास ही चिपका रहा।

III

पिता जी ने सुबह भैंस का दूध निकाला। जत्थेदार ने कहा, मैं तो कच्चा ही पी लूँगा। जो दूध बाकी बचा, उसे मौसी करतारो के चूल्हे पर गरम करके मैंने और मौलवी ने पी लिया।

"लाला जी आप अमृतसर क्यों नहीं चले आते, यहाँ क्या कर रहे हैं। वहाँ पूरे परिवार में चल कर रहिए। बूढ़ी हड्डियाँ, चार दिन सुख से काटो।" जत्थेदार ने दूध से सनी मूँछों को साफ करते हुए कहा।

जत्थेदार जी, मेरा तो कुछ नहीं, लेकिन एक दिन भी मैं कहीं इधर-उधर चला जाऊँ तो सारे गाँव में खलबली मच जाती है।" आज यहाँ रह कर देखें, अपने आप पता चल जायेगा आपको कि मैं यहाँ क्या करता हूँ।"

"रह तो नहीं सकते, लाला जी, उधर काम का हर्ज होता है।" जत्थेदार से पहले ही मौलवी बोल उठा।

"चलो, चलो, चलो" अभी ये शब्द हम तीनों के होठों पर ही थे कि तहमद बाँधे एक नवयुवक अपने बालों पर हाथ फेरता हुआ भीतर आया।

"छोटे भाई साहब कब तशरीफ लाये ?" मेरी ओर देख कर उसने कहा और हाथ मिलाकर बैठ गया। "आओ अहमद, क्या बात है ?" पिता जी ने उससे पूछा।

"भाई जी, जरा मेरे साथ चलिए। बात यह है कि मेरे मवेशी नवाब के खेत में चारा चरने निकल गए। अजीब बला गले पड़ गई है मेरे। मेरी तो वह सुनता

ही नहीं, कहता है कि भाई जी को बुला लाओ। उनका फैसला मुझे मंजूर होगा।"

पिता जी ने हमारी ओर देख कर कहा, "ये विदा हो जाएँ तो फिर चलेंगे।" अहमद शाह "अच्छा" कहकर चला गया। उसने अभी दरवाज़े से बाहर पाँव रखा ही था कि 'मता' नाई आ धमका।

मौलवी ने जत्थेदार से कहा : "उठो फिर धूप तेज़ हो जायेगी।" मता मेरे निकट आकर बोला, "छोटे भाई साहब कब आए, हमने तो देखा ही नहीं और अब जाने की बात भी शुरू कर दी।"

पिताजी के पूछने पर मता कहने लगा, "इस गुरा मरवाह ने तो हद ही कर दी। पता नहीं रब्ब को जान देनी है या नहीं, मक्का की एक पाई (31 सेर) पिछली सर्दियों में उससे ली थी। दस रुपये नकद मैंने उसे दिये थे। वह सौ बनाये बैठा है। जरा उसका बही-खाता देख कर हिसाब चुकता करवा दो, मेरी जान सांसत में पड़ी है।

"कोई बात नहीं, मता। मेहमान चले जायें, मैं गुरा को समझा दूँगा, हिसाब-किताब भी देख लूँगा।" पिता जी का जवाब सुनकर मता का मुरझाया हुआ चेहरा दमक उठा।

"अच्छा लाला, जी हमें देर हो रही है।" जत्थेदार की बात पर मैंने और मौलवी ने भी सहमति दर्शायी। पिताजी हमें विदा करने के लिए उठे ही थे कि जुम्मा जुलाहे ने आकर साहब सलाम कहा। "भाई जी पहाड़ा अलीप्याला से मैंने बछड़े का सौदा पटाया है, ज़रा चल कर बछड़े के दाँत देख कर उसकी उम्र तो बताएँ।"

"अरे जुम्मा के बच्चे; प्यालों के चकमें में मत आना।" जुम्मा को जवाब देते हुए पिता जी ने कहा : "अभी तो मुझे फुरसत नहीं है।" जुम्मा कुछ सहम गया। अमावस्या जैसे काले चेहरे से उसके मन की हालत जानना कठिन था। जबान खामोश थी और दाँत मुँह में बंद थे।

अब हम पक्के इरादे से उठे। जत्थेदार और मौलवी कहने लगे, लाला जी के काम तो कभी खत्म होंगे नहीं। अब छुट्टी ली जाए। मैंने भी कहा, हाँ-हाँ चलो। मैंने झुक कर पिता जी के घुटनों का स्पर्श किया, उन्होंने मुझे गले से लगाया।

"यह क्या ? आए कब और चल कब दिए, सुजानसिंह जी आपने बताया ही नहीं गुरमा आया हुआ है। अपने काम से मैं इधर न आती तो बिना मिले ही यह भाग जाता। गुरमा अब बड़ा आदमी हो गया है।"

"नहीं चाची खातू"

"नहीं क्या ? मैं तो किसी सबब से भाई जी से कुछ कहने आई थी।" इतनी बात मुझसे करके खातू पिता जी से कहने लगी, "भाई जी वे सूअर आए हुए हैं, उन जालिमों के चंगुल से छुड़ाओ मेरी बेटी की जान। लानत है ऐसे रिश्ते पर। देते हैं तलाक तो दिया करें—धूल मिट्टी पड़े उनके मुँह में।"

"अच्छा खातू, मैं इनको ज़रा विदा कर आऊँ।"

पिता जी की बात सुन कर खातू ने कहा, "आज नहीं जाने दूँगी मैं इन्हें; मैं मुर्गा भेजती हूँ और कढ़ाई के लिए आटा, घी और मीठा, गुरमा की तो कोई बात नहीं पर इसके संगी-साथी फिर कब आयेंगे यहाँ।"

"नहीं ये तो सुबह से ही तैयार हुए बैठे हैं", पिता जी ने फिर कहा, "खातू, मैं इन्हें विदा करके अभी आता हूँ।" खातू ने मुझे आज का दिन रुक जाने के लिए बड़ा जोर डाला। आज वह बेटी के ससुराल वालों से बहुत तंग होने के कारण बुझी हुई-सी थी।

हमें रवाना होते-होते दोपहर हो गई। हमने पिताजी से बहुत कहा कि आप अपना काम-काज करते रहें, और हमें जाने दें, पर वे गाँव की सीमा तक हमें छोड़ कर आना चाहते थे। गाँव का यह नियम ही है। आखिरकार जब हम दरवाज़े से बाहर निकले, हमारे आगे-आगे चले जा रहे पिता जी को देखकर दित्तू मीरासी ने कहा, "भाई जी कहाँ चल दिए, मैं आया था कि खाट की बुनवाई में आपकी मदद लूंगा।" दित्तू के हाथ में पटसन का गोला था और कंधे पर चौखट। पिता जी ने कहा, दित्तू। मैं ज़रा इन मेहमानों को गाँव की हद पार करवा आऊँ।"

"छोटे भाई जी तो रहेंगे न ?"

"नहीं, यह भी इनके साथ जा रहा है।" दित्तू को जवाब देते हुए आगे बढ़ते गए। सीमा के पास समूचा गाँव ही हमें विदा करने के लिए इकट्ठा हो गया। भाइयों की हवेली के तो सारे प्राणी थे।

अब मैं डायरी लिखता हूँ। 20 मार्च 1947 का दिन था। मेरा कलेजा धक-सा रह गया। मैं बड़ा पछताया। प्रेम और मझैले मुझे ढूँढते रहे। मैं नहीं जानता, क्यों, जहाँ पिंडी और अधवाल को रास्ते जाते थे, तल्लहा के चौक से मेरे पाँव अधवाल की ओर मुड़ गए। रास्ते में पहले सलूमन पड़ा (आया)। सलूमन के नत्थू खोजा को मैं ताऊ और शेरा को चाचा कहा करता था। चाची हुस्न बानों के घर में मेरे लिए और कुछ न हो तो वह सारे का सारा माखन, उसमें गुड़ की डलियाँ चूरा करके, काँसे के बरतन में मुझे चटा देती थीं। एक छोटी सी पिटारी में, वह भुने हुए चने, छिलके उतार कर, मेरे लिए जमा रखती थीं। इस समय मैं बड़े गहरे विचारों में डूबा था, मझैल ने मेरे कंधे से अपना कंधा भिड़ाया। क्या सोच रहा है मुसाफिर, क्या गिनती गिन रहे हो ?" यहाँ 'मुसाफिर' शब्द सुई

की तरह मेरे मन में चुभा। मैं लगभग चालीस बरस पहले की धुँधली स्मृतियों की अर्धमिटी रेखाएं गिन रहा था—मैंने चाची हुस्नबानो के घड़े में से पानी बरतन में निकाल कर पी लिया था, तो चाचा ने मेरे कान उमेठे थे, "अरे छोकरे फिर कभी ऐसा मत करना, तुम हमारा पानी नही पी सकते।" "लेकिन माखन और भुने हुए चने खा सकते हैं ? मेरी बात का जवाब चाची ने केवल इतना ही दिया था, "अगर तू फिर ऐसा करेगा तो भाई जी तुझे मेरे घर में नही घुसने देंगे।"

सलूमन और अधवाल के कुएँ और खेत सब साझे हैं।

आज मैं और मेरे साथी छह फौजियों की हिफाजत में हैं, तीन रोहतक के जाट हैं और तीन मुसलमान। हम सलूमन के पास से गुजरे तो मैंने गाँव की ओर रुख किया, तो एक मुसलमान फौजी ने कहा, "सरदार जी, अगर चलना है तो सीधे अधवाल चलो। और हाँ, लारी में बैठ जाओ, अंधेरा होने से पहले हमें पिंडी पहुँचने का हुक्म है।" मैं बता चुका हूँ, 20 मार्च 1947 का दिन था। सूरज का गोला अभी चमक रहा था। सड़क के दोनों ओर मैं खूब हरे गेहूँ के पौधे लहलहाते हुए देख रहा था। अबद की पुलिया के पास आकर लारी रुक गई बचपन में यही अपनी भैंस को लाकर मैं नहलाता और पानी पिलाता था। भाइयों की हवेली की सवारियाँ, लारी से इसी पुलिया पर उतरती थी। जब कभी मैं आता, पिता जी और उनके संगी-साथी यहीं मेरा इंतजार कर रहे होते। कोई मेरा सूट केस उठा लेता, कोई मेरा कंबल और कोई मेरी किताब। कोई प्यार-भरी हँसी दिल्लगी मे मुझे उठा लेता। अभी यह बहुत पुरानी बात नहीं हैं। 1920 के सत्याग्रह में मुझे पकड़ लिया गया था। 1941 में रिहा हुआ। पर फिर अगस्त 1942 में सब के साथ पकड़ा गया। मेरी गैरहाजिरी में पिता जी हमें छोड़ कर चल बसे। इस बार रिहा होकर भी मैं नज़रबन्द रहा। मतलब यह कि इससे पूर्व 1940 से पहले ही कभी मैं अधवाला आया हूँगा। कोई बहुत समय नही बीता, पर आज ऐसा लगा जैसे मैं सदियों से पराया हूँ। अबद की पुलिया से आज मुझे अपने घर की ओर भी न जाने दिया गया। जरा दूर, रास्ते से हटकर कुछ तहमद और तुर्रे वाले व्यक्ति खड़े थे। उनका इशारा पा कर, फौजी दूसरे रास्ते से मुझे गाँव के अन्दर ले गए। एक फौजी के रोकने-टोकने के बावजूद मैं दौड़ कर कच्ची सीढ़ियों से मकान की छत पर जा चढ़ा। छत पर पहुँचते ही मैं ताड़ गया कि अपने घर तक मुझे सीधे रास्ते से क्यों नहीं आने दिया गया। चाचा सुखा के घर तक सब खंडहर ही खंडहर पड़े हुए थे, अध-जली छतें, अध-गिरी दीवारें, हवेली का हुलिया बदला हुआ था। मैंने देखा—ताऊ नानू के मकान की गिरी दीवारों की ओट में कुछ औरतें-मर्द खड़े हैं। बख्तां सूबेदारनी, भागवती मीरासन और जीऊनी तेलन को कंधों से झकझोरते हुए मेरी ओर हाथ से इशारा कर रही है। सूबेदारनी

की आवाज़ मेरे कानों तक नही पहुँच रही थी लेकिन उसके हिलते होठों से इस समय इसके सिवा और कुछ निकल नहीं सकता था। "अरी भागवती। ओ री जीऊनी, वह भाई सुजान का लड़का नहीं है क्या ?" "है तो वही, पर यह लड़का और इतनी बड़ी दाढ़ी ?" "हमारे लिए तो लड़का ही है 'गुरमा', हमारे हाथों मे जन्मा है।" हाँ, सच, मथरों की दाई तो खातू ही थी।" "हाँ हमारे हाथों में जन्मा है, दो बहनों के बाद पहला लड़का था। छत को फाड़ कर इसे बीच में से निकाला था।" हाय बेचारा भूखा-प्यासा होगा, यहाँ हालचाल पूछने वाला कौन है। "हम तो इससे बात भी नहीं कर सकते।" हाय रे जमाना ? यह बिहार कहाँ पर है। हमारी बला जाने जहाँ मुसलमानों को मारा गया और इधर हमारे लोगों को तैश आ गया।"

छत से नीचे उतरते हुए अभी चार सीढ़ियाँ रहती थीं कि मैं धड़ाम से बरामदे में जा गिरा। एक फौजी ने मेरे कपड़े झाड़े। अंदर के कमरे का दरवाजा खोलकर मैं भीतर घुसा। आली कोठरी में अंधेरा था लेकिन मैं समूचा घूम आया। कोई चीज मेरे पाँव से टकराई। भीतरी कमरे में दीवार के साथ लकड़ी के बिना ढकने वाले दो संदूक पड़े थे। अंदर घुसते ही बांयी ओर दरवाज़े के पास, एक चक्की वैसी-की-वैसी पड़ी थी। इस चक्की पर, हमारे घर आकर कई बार नदर अलपिआला की बहू मक्का पीसा करती थी। भागी आप से आप माहिया के कई टप्पे गाती रहती और मैं दरवाज़े के पीछे छिप कर सुना करता था। उन टप्पों में से मुझे एक याद आ गया। मैं गुनगुनाने लगा। "पिपले ने पत्तिआ वे के ही खड खड़ लाई हेई या झड़ गए पुराणे वे, रुत नविआँ दी आई होई आ।" (अरे ओ पीपल के पत्ते/क्या खड़ खड़ लगा रखी है, पुराने तो झड़ गए, अब नए पत्तों की रुत आ गई है)

"चलो सरदार जी, अंधेरा होने से पहले पिंडी पहुंचना है।" एक फौजी की आवाज़ सुन कर जैसे मेरी नींद खुल गई।

पिचके हुए जूते

ये जूते जब पिचके हुए नही थे तो वैराग्य जहाँ भी इन्हें पहन कर जाता, लोगों को इसके पाँव की तरफ खास-तौर से देखना पड़ता। जान-पहचान के लोग तो इस जूते के बारे में प्रश्नों की झड़ी लगा देते, लेकिन अपरिचित भी इनकी ओर ऐसी दृष्टि से देखते, मानो अभी कोई सवाल पूछने वाले हों। मित्र मंडली में तो ये जूते एक बार कुछ समय तक काफी चर्चा का विषय बने रहे। वैराग्य का कोई ही मित्र ऐसा होगा, जिसने एक बार ऐसे जूते मंगवा देने की मांग न की हो, "यार वैराग्य। ये जूते कहां से, और कब मंगवाए है ? क्या लागत आई ? कौन लाया है ?" यह तो एक-एक बार सबने पूछा होगा। वैराग्य से इनके संबंध में जितने भी सवाल पूछे जाते, वह खीझता नही था, एक स्वाद-सा अनुभव करता था। यह उसके चेहरे से पता चल जाता है। बल्कि यह प्रतीत होता कि अगर कभी इन जूतों के बारे में कोई कुछ न पूछे तो वैराग्य उदास-सा दिखने लगता। इन जूतों के कारण वैराग्य कई बार छोटे-छोटे हादसों से, और दो-एक बार कुछ काफी बड़ी दुर्घटनाओं का शिकार होने से बचा। कारण यह कि चलता-चलता आगे सीधा देखने की बजाय अपने जूतों को देखना शुरू कर देता। जब खास तौर पर वह इन जूतों की तरफ देखता तो उसकी नजर जूतों तक ही सीमित न रहती, वह दूर-दूर चली जाती। याद तो सीमाओं के बंधन से मुक्त है, याद को तो पास-पोर्ट वीजा दरकार नही। जहाँ बैठ कर ये जूते तैयार हुए, वे औजार जिनसे ये जूते बने, फिर वे हाथ जिन्होंने इन जूतों के लिए धागे बटे, और इनके चमड़े को मलमल कर धोया, वे घुटने जिनका सहारा इन जूतों के जन्म में सहायक हुआ, वह सारे का सारा वातावरण, वैराग्य की आँखो के सामने चलचित्र की तरह घूम जाता। वैराग्य ने उन हाथों के बने कई जूते इस्तेमाल किए थे, कभी उसने इस प्रकार उन जूतों से इतना मोह नहीं दिखाया था, बल्कि थोड़ा-पुराना हो जाने पर वह इन्हें किसी नंगे पाँव वाले गरीब को दे देता था और स्वयं नए ले आता था। जूते जल्दी बदल लेने के कारण वैराग्य को चर्मकारों के मुहल्ले में जाने का अवसर जल्दी जल्दी मिल जाता था। आस-पास के मित्र-संबंधियों का आग्रह पूरा करने के लिए भी उसे रोज-रोज या तीसरे-चौथे दिन उस मुहल्ले में चक्कर लगाने का मौका मिल जाता था। बहुत-से दोस्त तो सन्देश भेजते कि हमारे पाँव

का नाप एक ही है, अपने नाप के ही बनवा कर भेज दो। वैराग्य जब इस काम के बहाने जाता, वह दरवाज़े पर से ही ऊँची आवाज़ में पुकारता, "चाचा सिराज।" "साहब सलामत। आपका आना मुबारक, सिराज हाथ में लिए काम को करते हुए ही जवाब देता और साथ ही ऊँचे स्वर में कहता, "नूरो। शाह के बैठने के लिए पीढ़ी ले आ।"

नूर दौड़ कर पीढ़ी ले आती और पास बैठ कर हौले-हौले, कोमलता से वैराग्य के पाँव पर हाथ फेरने लग जाती। सिराज देखकर कहता, "इतनी जल्दी नाप में फ़र्क थोड़े ही पड़ने वाला है, "वैराग्य के पाँव की तो मुझे ऐसी पहचान है कि आँख मीच कर जूते बना दूँ तो भी तिनके-बराबर फर्क न आए। आ जाए तो मुझे नत्थू का बेटा न समझना।" इस तरह की बातें कितनी ही देर उस छोटे से कच्चे मगर अच्छी तरह लिपे-पुते मकान में बैठे-बैठे होती रहतीं। इस दृश्य की हू-बहू याद ये जूते वैराग्य के आँखों के सामने उभार देते और उसका मन कितनी-कितनी देर खुशी, उदासी, नाराज़गी, बेरूखी, आशा-निराशा की खिचड़ी बना रहता।

अब वैराग्य को कितने ही दिन इन पिचके हुए जूतों को स्लिपरों की तरह पहनते हुए हो गए। ये सिर्फ पिचके हुए ही नहीं रहे, इनके पंजों के दोनों तरफ ऐसी खिड़कियां भी निकल आईं, जिनके द्वारा हवा तो क्या आती, मिट्टी-कंकर बे-रोक-टोक प्रवेश करके पैरों में कुछ चुभन-सी देते रहते। नहाने-धोने के बाद जब वैराग्य बूट या जूती पहनने लगता तो ज़रूर अपनी भाभी से टिंकचर आयोडीन पाँव की किसी न किसी उँगली पर लगाने के लिए माँगता। बस उसी समय एक मज़ेदार चर्चा छिड़ जाती। अभी इन जूतों का पीछा छोड़ा नहीं जायेगा क्या।

रोज़ पाँव पर किसी न किसी जगह घाव सा बना देते हैं यह जूते। "वैराग्य के पाँव पर टिंकचर का फाहा रखते हुए भाभी जब भी यह बात कहती तो वैराग्य हाली का शेर गुनगुनाने लग जाता : "है पास दोस्तों की मेरे यही निशानी, या रब कभी न पाए ज़ख्म ईद-इ-माल मेरा।" थोड़ी देर देवर-भाभी की अच्छी नोक-झोंक होती रहती। यह मौका होता, जब भाभी उसे शादी करवा लेने को भी उकसाती। न मालूम कितनी लड़कियों के नामों और नयन-नक्श की तसवीरें खींच-खींच कर भाभी उसके सामने रखती, और वैराग्य हंसी में टालते हुए कहता, "भाभी तुम पढ़ी-लिखी तो इतनी नहीं, पर चित्रकार बड़ी अच्छी हो, अगर तूलिका (ब्रश) तुम्हारे हाथ लग जाए तो शायद अमृता शेरगिल को भी चित्रकारी में मात दे दो।"

"अगर थोड़ा और बड़े हो गए तो कोई लड़की नहीं देगा, छड़ा-छाँट (कुंवारे) रह जाओगे, और छड़े (कुंवारे) को पड़ोस में कोई मकान भी किराए

पर नहीं देता।" भाभी की बात सुनकर वैराग्य कहता :

"भाभी। दुनिया में व्याह करवाना ही एक काम नहीं रह गया है। माँ-भाभियों को तो यूं ही चिन्ता लगी रहती है।" ऐसे अवसर पर, इस तरह की चर्चा के समय, वैराग्य तीन-चार प्रसिद्ध कुंवारों के नाम ले देता, जिनका देश में बड़ा नाम था। और फिर इस तरह लाड से भाभी को संबोधित करता : भाभी! बंगाल के मुख्य मंत्री डाक्टर राय का नाम जानती हो, उसने सारी उम्र व्याह नहीं करवाया। और फिर उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री गुप्ता, मद्रास के मुख्यमंत्री कामराज नाडार और ये कृष्ण मैनन सब कुंवारे के कुंवारे हैं, अब बताओ क्या वे मारे-मारे फिरते हैं, इन्हें क्या रिश्तों की कोई कमी थी? इससे साबित होता है कि दुनिया में व्याह करना ही कोई बड़ी बात नहीं। अपने इस पंजाब के सूबे में ही, भाभी, मैं तुझे कई मशहूर मर्द-औरतों के नाम बता सकता हूं, जिन्होंने शादी नहीं की और देश की सेवा को ही उद्देश्य मानकर अपनी उम्र गुज़ार रहे हैं।" "मैं नहीं जानती ये बातें, मन न माने तो सौ बहाने। मैं कल इन पिचके हुए जूतों को जमादार की टोकरी में फेंक दूंगी। इन्हें पहनकर तुम जिस कमरे में से गुज़रते हो, वह धूल मिट्टी से भर जाता है, दरी गंदी हो जाती है, पैर भी तो तेरे खराब होते हैं इनसे।"

"लो कर लो बात। व्याह की बातों को जूतों से कैसे ला जोड़ा है। भाभी के क्रोध का वैसे भी वैराग्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, और फिर भाभी का क्रोध भी कौन सा सचमुच का क्रोध होता था। वैराग्य भाभी की आँखों की भाषा और उसके होठों की मुस्कान दोनों को पहचानता था। भाभी, जैसे उसके हृदय को टटोल रही थी, उसके मन में छलक रहे प्रेम की थाह पा रही थी। भाभी ने एक दिन, रात के समय, ये पिचके जूते कूड़े के ढेर में डाल ही तो दिए जो सुबह जमादार को उठाना था। लेकिन अगले दिन सुबह, जागते ही उसने हैरानी से, ड्राइंग रूम के दरवाज़े के बीचों-बीच उन जूतों को पड़े देखा। उर्दू में मशहूर शायर त्रिलोक चंद 'महरूम', सुबह की सैर करते हुए इधर आ निकले थे और वैराग्य ड्राइंग रूम में बैठा उनकी एक कविता 'पुराना चोला' के बारे में विचार विमर्श कर रहा था। वैराग्य की भाभी गई थीं जूतों को उठाकर फिर से कूड़े के ढेर में डालने, लेकिन झिझक-सी गई।

"पुरानी चीज़ों से प्यार हो जाता है, उन्हें छोड़ते समय धक्का-सा लगता है। लेकिन इस शरीर से ज़्यादा प्यारी हमें कोई चीज़ नहीं है। छोड़ना इसे भी पड़ता है। इसलिए मन को यह सीख देनी चाहिए कि वह त्याग के लिए तैयार रहें। "पुराना चोला" कविता में इसी तरह के भाव हैं। "शरीर की बात तो अपने वश में नहीं।" सब कुछ अपने वश में हैं और कुछ भी अपने वश में नहीं।"

"फिर सारी बात तो मन की हो गई न ।"

वैराग्य की भाभी के कानों में दोनों की बातें पड़ीं । "यह तो बहुत गहरे उतर गए हैं," कहती हुई वह रसोई घर की ओर लौट आई ।

वैराग्य महरूम साहब को विदा करके लौटा तो उनकी पारस्परिक बातचीत का असर अभी उसके दिमाग में बना हुआ था । "भाभी । आज तू मुझे एक बात बता, जो चीज़ पुरानी हो जाए, झट उसे परे फेंक कर, उसकी जगह नई ले आनी चाहिए ।"

'बच्चू । मैं तेरी चालाकी समझती हूँ, अभी तू मिलने आए हुए आदमी का दिमाग इन बातों से चाट रहा था ।" बदलने की बात चीज़-चीज़ पर निर्भर करती है । अच्छा, तू बड़ा खोजी बना फिरता है, मेरी एक बात का जवाब दे ।'

"जो आदमी पुरानी चीज़ से तो बड़ा प्यार जतलाए, उसे छोड़े नहीं, लेकिन उसके होते हुए, उसके साथ की नई को बरतता रहे, इस बारे में तेरा ज्ञान क्या कहता है ? जैसे किसी पर चोरी का झूठा आरोप लग गया हो या जैसे किसी की चोरी पकड़ी गई हो, वैराग्य को पसीना-पसीना हुआ देखकर भाभी ने झट कहा : "वैराग्य, बात तो जूतों की ही हो रही है न ! तेरे पास कितनी तरह के कितने जोड़े-जूतों के, बूटों के हैं, तू बारी-बारी सबका इस्तेमाल करता है । तू सीधी बात बता, घर में पुरानी से प्यार, और बाहर के लिए नई-नई इस्तेमाल करना ठीक है ? वैराग्य के ओठों पर ताला लगा देख उसकी भाभी ने कहा :

"घबराओ नहीं, बात जूतों की हो रही है ।" "भाभी चित्रकार ही नहीं यह तो फिलासफर भी है ।" "तू हीले-बहाने मत बना व्याह की बात बता, कौन सी लड़की तुझे पसन्द है ।"

"लो, भाभी कहाँ का बात कहाँ ले जाती है ?" "अच्छा होता अगर मैं ये जूते लाती ही नहीं । लाहौर "जोड़-मेले" पर मेरा जाना, तुझे मालूम ही है, बस एक इत्तफाक ही था । वैराग्य ! मैं तुझे बता चुकी हूँ सिराज मोची तेरे वास्ते जूते लेकर अपने-आप लाहौर आया था, इस ख्याल से, कि कोई-न-कोई दिल्ली या अमृतसर से आया हुआ आदमी मिल ही जायेगा, जिसके हाथ जूते भिजवा दूगा ।

तो फिर इसमें खराबी क्या हो गई । भाभी । जूते लाकर पछताने का क्या मतलब हुआ ?"

"वैराग्य । याद है तुझे, जिस समय मैंने तुझे बताया कि सिराज ने कहा था कि नूरो अब नूरभरी हो गई है, और उन जूतों को खुद उसने अपने हाथों से बनाया है और कि उसी ने ही अपने अब्बा को जूते लाहौर ले जाकर तुझे पहुँचाने के लिए मजबूर किया था, तो यह बात सुन कर तेरा चेहरा बदल गया था और

तेरी आँखें भी मुस्कुराने लगी थीं। तब मैंने इतना ध्यान नहीं दिया था, पर अब यह पिचक जाने पर, फटे हुए जूतों पर तेरा जनून देखकर, मैं कहती हूँ कि मैं इन्हें न ही लाती तो ठीक था।'

"भाभी तुम तो बात को हद से पार ले गई हो।"

"तूने जिस बात को सीने में छिपाया हुआ है, वह तेरे भाई साहब को तभी मालूम थी।" "लो और सुनो।" "वैराग्य, याद नहीं तुझे कि सारे गाँव में शोर मच गया था कि वैराग्य ने सिराज मोची के घर खाना खाया है। तेरे भाई को लोगों ने ताने दिए, उन्होंने सिराज से पूछा, पहले तो वह मुकर गया, और फिर कहने लगा, दूध में गूँध कर नूरो ने पराठे सेके थे, पानी के नही थे, दूध से बनाए गए पराठे अपवित्र नहीं होते, क्या याद नहीं तुझे कि तूने खुद भाई साहब के आगे स्वीकार किया था।" "भाभी यह क्या कहा तुमने, मुझे क्या याद नहीं? अगर मैं भूलने वाला होता तो आज तेरे ताने···।" "अच्छा, तुम तो नहीं भूले, मैं ही एक बात बताना भूल गई थी। सिराज ने जब मुझे बताया कि नूरो अब नूरभरी हो गई है, उसने यह अब भी कहा था कि नूरो के बिना अब यह अपना कामकाज भी नहीं चला सकता और कि इन जूतों को हमारी आखिरी सौगात समझा जाए।"

"भाभी। पहले बताया होता तो···।" "तुझे जान-बुझ कर मैंने नहीं बताया था। वैसे जो रेशमी-सूट मैं अपने साथ ले गई थी, उसे सिराज के हाथ नूरो के व्याह के मौके के लिए भेज दिया था।" "भाभी, यह खाने-पीने में पवित्र-अपवित्र की बात अब मिट-मिटा गई है।"

"खुशी से थोड़े ही मिटी है। इन्हीं बातों का नतीजा तो पाकिस्तान बना। और फिर वैराग्य। हमारे देखते-देखते ही नक्शा बदल गया। मुसलमान अब हमारे घरों में पका नहीं खाते हैं। मीरासी भी, जो हमारी बरातों में जाते थे, अब रसद माँगते हैं।"

"अब क्या किया जा सकता है भाभी?" भाभी ने वैराग्य की ओर कुछ ऐसे लहजे से देखा कि वैराग्य ने स्नेह में भरकर भाभी की छाती में अपनी मुंह छिपा लिया। "वैराग्य अब खाने-पीने, पवित्र-अपवित्र होने की पाबंदियाँ हट गई हैं लेकिन देशों की सीमाओं के बंधन हमारे बीच आ खड़े हुए हैं। ऐसी सीमा-रेखा खिंच गई है कि अपनी जन्म-भूमि, अपना वतन भी, आज़ादी से जाकर देख नहीं सकते, वैराग्य, कितना जी चाहता है, पंजा साहब जाने को।"

स्पष्टत: वैराग्य ने अपनी प्यारी भाभी की इच्छा को ही वास्तविक रूप दिया। बैसाखी से एक दिन पहले वैराग्य और उसकी भाभी रावलपिंडी स्टेशन पर उतरे। सिराज और नूरभरी स्टेशन पर खड़े उनका इन्तज़ार कर रहे थे। नूरभरी की गोद में बच्चा था। वैराग्य की भाभी ने चूम-पुचकार कर उसे अपनी

गोद में उठा लिया। "यह तो हू-बहू वैराग्य है।"

भाभी के मुँह से एकाएक निकला। नूरभरी ज़रा कुछ सहम सी गई। इसी तरह उसकी एक सहेली ने भी कहा था। सिराज ने चादर के एक सिरे से बंधे जूतों को खोल कर वैराग्य को देते हुए कहा, "यह तुम्हारे नाप का एक जोड़ा नूरो के व्याह से पहले का बना पड़ा था।"

नूरो की माँ उसके छुटपन में ही मर गई थी। नूरो बहुत खुश होती थी, जब वैराग्य उनके घर आता था। एक बार उसने दूध में आटा गूँध कर पराठे भी वैराग्य को जरूर खिलाये थे, लेकिन दूसरी बार कभी नहीं। नूरो जब सयानी हो गई थी, तो वैराग्य एक बार उनके घर आया था। सिराज घर पर नहीं था। नूरो ने भीतर से कुंडी नहीं खोली थी, और ऊँची आवाज़ में कहा था : अब्बा के लौटने पर ज़रूर आना नहीं तो मैं नाराज़ हो जाऊंगी और फिर कभी नहीं बोलूंगी।"

"वैराग्य को ये बातें याद आ रही थीं। पिंडी से पंजा साहब तक सब इकट्ठे गए। हमारी कहानी तो पूरी हो गई है। वैराग्य की भाभी की जेठानी बनने की इच्छा पता नहीं, कभी पूरी हुई कि नहीं।

नए जूते मिल जाने पर पुराने पिचके हुए जूतों की चर्चा भी अब नहीं होती है।

कविताएं

[पंजाबी कविताओं का हिंदी लिप्यांतर सहित अनुवाद]

बचपन

विच रंज, रंज वधा गई,
मन धूह जिही इक पा गई,
कुझ करक सीने ला गई,
जद याद बचपन आ गई।
वाह् मज़ा सी अण-जाणिआं,
बिपता पई जद जाणिआ।
दंदीआं किसे नूं वड्डणा,
गाल्लां किसे नूं कड्डणां,
अडा किसे नूं मारना,
झग्गा किसे दा पाड़ना,
कदे ऐसे दे, कदे ऐसे दे
भन्न कलम, पट्टी मेस दे,
पीपा घिउ दा डोल्ह के,
रेशम मिट्टी विच रोल के,
मूरत दा शीशा तोड़ना,
कच्चे दे भांडे फोड़ना
खा के चुपेड़ां नस्सणा,
रोणा ते छेती हस्सणा,
मारो ! बड़ा शैतान ए,
जी जाण दिउ, अंजाण ए।
किंनीआं सी मौजां हुंदी आं,
कैंदे न कुझ पाबंदी आं,
छल्लीआं तो दाणे उधाड़दा
फिरदा सां फक्के मारदा,
होवे महल्ला जां गली,
ठंडी सड़क, अनारकली,
नंगा फिरां, कज्जिआ फिरां,

रंज में, रंज बढ़ा गई,
मन में एक धुक-धुकी सी मचा गई,
सीने में कसक सी जगा गई,
जब याद बचपन की आ गई।
वाह, कैसा अनजाना मज़ा था,
जब विपदा पड़ी, तब मालूम हुआ।
किसी को दांतों से काट लेना,
किसी को गालियां देना,
किसी को अडंगी मारना,
किसी का कुरता फाड़ देना,
कभी इसका, कभी उसका,
कलम तोड़ देना, तख्ती मिटा देना,
कनस्तर का घी बिखेर कर,
रेशम मिट्टी में मिला देना,
तसवीर का शीशा तोड़ देना,
मिट्टी के बरतन फोड़ देना,
चपत खा कर भागना,
रोना और फिर जल्दी ही हंस देना,
पीटो इसे, बड़ा शैतान है यह,
अजी छोड़ दीजिए, अनजान है यह।
कितनी मौज हुआ करती थी,
कहीं कोई बन्धन या पाबन्दी नहीं थी,
भुट्टे से दाने निकाल कर,
खाता-खाता घूमता रहता था,
मुहल्ला हो या गली,
ठंडी सड़क हो या अनार कली,
कभी नंगा घूमता कभी तन ढक कर,

हर हाल विच रज्जिआ फिरां,
बे-फिकर, बे-परवाह सां,
मन दा मैं शहिनशाह सां,
कोई ना सी लत्थी-चढ़ी,
मुड़ आउँदी न उह घड़ी,
अड़ी आं इह अहुदे दारीआं,
बचपन तों सौ-सौ वारीआं !

कहिंदा कोई शैतान सी,
कोई आखदा हैवान सी ।
मासी ने कहिणा 'मुक्खिआ'
चरदा ही रहिणै भुक्खिआ ।

मारूंगी मरने-जोगिआ !
कैडा तूं ज़िद्दी हो गिआ !
भाभी कहे, अमोड ए,

कैड़ा इह रंडी-छोड़ ए !
गल्लां मुहब्बत वाली आं,
अज्ज बण गईआं ने गाल्हीआं ।
गाल्हां इह कि उं अखवांदीआं,
सीने'ते ठोकर लांदीआं,
सीना, इह उह सीना नहीं,
सीना इह, बिन कीना नहीं,
अणजाण सां 'गुरमा' सां मैं,
हर अक्खदा सुरमां सां मैं
हुण किउंकि जत्थेदार हां,
कईआं अक्खां दा खार हां,

अकल ते इह जो होश है,

ऐसे दा सारा दोष है,
शैतान तो चिढ़ना वां मैं,

हर हाल में सन्तुष्ट रहता,
निश्चिन्त, बेपरवाह सा,
अपने मन का मैं बादशाह था,
कोई जीत थी न कोई हार,
वह घड़ी-पल फिर नहीं लौटते,
बेहूदा हैं ये पद और पदवियां,
बचपन तुझ पर सौ सौ बार बलिहारी हूँ ।
कोई शैतान कहता था,
कोई हैवान का नाम देता था ।
मौसी प्यार से मुक्खिआ पुकारती,
कहती—तू हमेशा कंगलों की तरह चरता ही रहता है,
पीटूंगी तुझे अरे पाजी,
तू कितना ज़िद्दी हो गया है,
भाभी कहती—यह बाज़ आने वाला नही,
बड़ा ही ढीट-पत्थर है,
स्नेह दुलार की बातें,
आज गालियां बन गई है,
गालियां क्यों कहते हैं इन्हें ?
सीने पर ठोकर लगाती हैं ये,
सीना, यह वह सीना नहीं,
इस सीने में फरेब है,
भोला भाला 'गुरमा' था मैं,
हर आँख का सुरमा था मैं,
अब क्योंकि जत्थेदार हूं,
कई आँखों में कांटे की तरह खटकता हूँ ।
यह जो अक्ल और होश नाम की चीज है,
सब इसी का दोष है,
कोई शैतान कहे तो चिढ़ जाता हूँ मैं,

भैड़ा कहो, भिड़ना वां मैं

किउँकि मैं हुण बच्चा नहीं,
बच्चे जिहा सच्चा नहीं,
अन्नहें नूं अन्नहां कहि तक्के,
गुस्सा वी उहदा सहि तक्के,
कहो चोर नूं जे चोर ए,
मच्च जाउँदा फिर शोर ए,
बेशक्क अंझाणे भुल्लदे,
इक नाल दूजे घुल्लदे,
मारन-मरन तक जाउंदे,
ढहिंदे कदे ते ढाहुंदे,
लड़ना वी इह इक खेल है,
बस मिंट दे विच मेल है
बीरे नूं धीरे मारिआ,
मां एहदी उहनूं ताड़िआ,
उस आपणी मां नूं दस्सिआ,
गाल्हां दा मींह बस वस्सिआ,

गुत्तां ते पट्टीआं पुट्टीआं,

लड़-भिड़ के जदों हट्टीआं,
बीरे दी माँ बीरा लब्भे
धीरे दी माँ धीरा लब्भे,
बीरे दी बाँह, धीरे दे गल,
धीरे दी बाँह, बीरे दे गल,
औह आउंदे नी हस्सदे,
दिल दी सफाई दस्सदे !
बच्चे ने इक्के हो गए,
वड्डीआं ने झाटे खोह लए,
चिर तक उह रहीआं रुस्सीआं;
उह खेडदे मिल खुशीआं ।

कोई बुरा कहे, तो लड़ने को तैयार हो जाता हूँ,
क्योंकि अब मैं बच्चा नहीं रहा,
बच्चों की तरह सच्चा नहीं रहा,
कोई अंधे को अंधा कह कर दिखाए,
फिर उसका क्रोध भी सह कर दिखाए,
चोर को अगर चोर कह दो,
तो बस शोर मच जाता है,
बेशक बच्चे भूल कर बैठते हैं,
एक दूसरे से कुशती लड़ने लगते हैं,
मरने-मारने पर तुल जाते हैं,
कभी हार जाते हैं, कभी हरा देते हैं,
इनकी लड़ाई भी एक खेल है,
दो मिनटों में मेल मिलाप हो जाता है,
बीरे को धीरे ने पीटा,
इसकी माँ ने उसे फटकार लगाई,
उसने अपनी माँ को जा कर बताया,
फिर तो गालियों की बरसात होने लगी,
एक दूसरे की चोटी और बाल खींचने लगीं,
जब लड़-झगड़ कर अलग हुई,
बीरा की माँ बीरा को ढूंढने लगी,
धीरा की माँ धारा को ढूंढने लगी,
बीरा की बाँह धीरा के गले में थी,
और धीरा की बाँह, बीरा के गले में,
चले आ रहे थे दोनों हँसते हुए,
दिल की सफाई दर्शाते हुए,
बच्चे तो फिर एक हो गए,
लेकिन बड़ों ने अपने बाल नोच लिए,
देर तक वे रूठी रहीं,
और वे थे कि मिल कर खुशी खुशी खेलते रहे,

उह दौड़दे, उह हस्सदे
संग सैणतां दे दस्सदे ।
सिक्खो असाथों हस्सणा,
मिल बैठणा, मिल वस्सणा,
वाह बालपन दे ज़मानिआ ।
अणजाणिआ ना जाणिआ ।
हुण ,ओए' कोई कहिंदा नहीं,
आखे, तां मैं सहिंदा नहीं,
झूठी वडाई हो गई,
दिल दी सफाई धो गई,
मूंह' ते : जी इह सरदार है,
साडा इह जत्थेदार है;
पिच्छों इह मित्तरमार है,

इस दा ना कुझ इतबार है,
इथों सुनाई एस नूं,
इथों लगाई एस नूं
भांबड़ जदो बस मच्चगिआ
विच झूठ, विच्चे सच्च गिआ;
अग्ग ईरखा दी बल रही,
दुनीआं है, इस विच जल रही;
बच्चा ही इक उसताद है,
इस अग्ग तों आज़ाद है,
कुझ, सुआद है, कुछ सुआद है,
तां ही ते बचपन याद है ।
हां, होर वी इक राज़ हैं,
दस्सण दा, जो मुहताज है,
बापू दी बच्चा जान है,
बच्चे नूं उस' ते माण है,
उस माण' ते है खेलदा,
नहीं फिकर हलदी-तेल दा,
पक्की-पकाई मिल गई,

दौड़ते रहे, हँसते रहे
मानो इशारों से बता रहे हों,
सीखो हम से हँसना
मिल बैठना, मिल कर रहना
वाह रे बचपन के ज़माने !
अनजाने में, न जान सका तुझे,
अब 'अरे' कोई नहीं कहता,
कोई कह दे तो मैं सहता नहीं,
झूठी प्रशंसा की जाती है,
दिलों की सफाई जाती रही है,
मुँह पर तो कहते हैं, जी यह सरदार है,
हमारा यह जत्थेदार है,
पीठ के पीछे कहते हैं कि यह विश्वास-
घाती है,
इसका कुछ भरोसा नही,
इससे कुछ कहा,
उसके कुछ कान भरे,
जब ज्वाला खूब भड़क उठी,
उसमें झूठ-सच दोनों व्याप्त हो गए,
ईर्षा एक आग है जिसमें
दुनिया जल रही है,
बच्चा ही बस उस्ताद है,
इस आग से आज़ाद है,
कुछ मज़ा है, कुछ स्वाद है,
तब ही तो बचपन याद है,
हां, एक राज़ और भी है,
जिसे बताने की जरूरत है,
बच्चे, बापू की जान हैं ।
बच्चों को उस पर मान है,
उसी कारण वह खेलता रहता है,
उसे नोन-तेल-लकड़ी की चिन्ता नहीं,
पका-पकाया खाना मिल जाता है,

तल्ली-तलाई मिल गई,

ना नौकरी, ना कमाउणा,
सौणा ते पीणा खाउणा,
पैणा नहीं शरमाउणा,
करज़ा ना मंगण जाउणा,
कोई वी उस नूं फिकर ना,
कुझ सोचणे दा ज़िकर ना,
की उस नू कुझ लोड़ां नहीं ?
लोड़ां दी आं थोड़ां नहीं ?
नहीं, नहीं उह अपणे आप' ते,
निसचा है, उसदा बाप ते !
दुनिया है इक, मालिक है इक,
सभनां लई, पालिक हैं इक,
सारा ही, इह जग्ग है,
वागी, इक्को दा वग्ग है,
अकलां ने मुशकां तण लईआं,
वड्डिआं ने हद्दां बन्ह लईआं,
बखरे, बखेवें पै गए,
वखरे, रुझेवें पै गए,

इक सागरों उर वार है,
इक दूजे बन्ने पार है,
कीती है इह तकसीम चा,
यूरप है उह, इह एशीआ,
वंड सागरां दी होई जद,
फिर आई दरिआवां दी हद्द,
इह चीन, उह जापान है,
इह मेरा हिन्दुस्तान है,
कुझ इस तरहां दा हिसाब है,
यू० पी० है, इह पंजाब है,
रावी दा बन्नां, बार है,

तला हुआ चाहिए तो तला हुआ मिल जाता है,
न नौकरी की चिन्ता, न कमाने की,
बस सोना, पीना और खाना,
शरमाना नहीं पड़ता,
कर्ज मांगने जाना नही पड़ता,
कोई उसे चिन्ता नहीं,
कोई फिक्र नहीं उसे
क्या उसे कोई अभाव नहीं है ?
कोई ज़रूरत कोई कमी नही ?
नही, नही उसे अपने ऊपर भरोसा है,
भरोसा है उसे अपने बाप पर,
दुनिया है एक, मालिक एक है,
सब का पालनहार एक है,
सारा यह संसार,
एक ही गडरिए का रेवड़ है,
अक्ल ने मुश्कें कस ली हैं,
बड़ों ने हद-बंदी कर ली है,
बंट कर, अलग-अलग हो गए,
अब मुसीबतें भी तरह-तरह की टूट पड़ी हैं,
एक सागर के इस ओर है,
एक सागर के उस छोर पर है,
इस तरह के विभाजन कर दिये गए,
यह यूरोप है, यह एशिया है,
जब सागरों की बांट हो गई,
तो नदियों के बंटवारे की बारी आई,
यह चीन है, वह जापान है,
यह मेरा हिन्दुस्तान है ।
कुछ इस तरह का हिसाब है,
यू० पी० है, यह पंजाब है,
यह रावी का किनारा है, इसके सामने

धन्न ते पोठोहार है,

विच तणगिआ, इक जाल सा,
माझा, ते इह उह मालवा,
ज़िल्हिआं, तहसीलां, थाणिआं,
वंडिआ गिआ जग जाणिआं,
मेरा गिरां, मेरी गली,
थोड़ी जिही बस थां मली,
गली'च मेरा घर है,
इस'ते ही ना निरभर है,
इह मंजी मेरे भाई दी
इह है मिरी भरजाई दी,
इह आई दी, इह झाई दी,
इह हैगी मां-पिउ-जाई दी,
मेरी, मैं इस'ते सोवणा,
इस वंड विच, खुश होवणा;
बालक दा कुल जहान है,
वड्डे दा थोढ़ा थान है,
चंगा ही सी अणजाणिआं,
बिपता पई जद जाणिआं,
बापू दा छोटा बाल बण,
खुशहाल बण, खुशहाल बण।

बार का क्षेत्र है, उधर धन्नी और
पोठोहार का इलाका है।
बीच में एक जाल सा तन गया है,
यह माझा, तो यह वह मालवा,
जिलों, तहसीलों, थानों में,
बांटा गया तो दुनिया को मालूम हुआ,
मेरा गाँव, मेरी गली,
थोड़ी सी बस जगह घेरता था,
गली में मेरा घर है,
इसी पर ही टिकी है न,
यह चारपाई मेरे भाई की,
यह है मेरी भौजाई की,
यह चाची की, यह माँ की,
यह मेरी बहन की,
यह मेरी, इस पर मैं सोता हूँ,
इस बांट पर खुश हुआ करता,
बच्चे का कुल जहान है,
बड़ों के लिए जगह सीमित है,
अच्छा था जब अनजान था,
विपदा पड़ी, तब मालूम हुआ,
बापू का छोटा सा बालक बन जा,
ताकि तू खुशहाल रहे।

(1930)

नानक का ईश्वर

इक नाम है खुदा दा, दूजा रसूल दा ए।
(इक नाम है खुदा का, दूजा रसूल का है)
मन्ने रसूल नू, ता अल्ला कबूल दा ए।
(मानो रसूल को तो अल्लाह कबूल करता है)
इह भाव मीआं मिट्ठे, तेरे असूल दा ए।
(यह मीठी भावना, मियां ! तेरे उसूल की है)
मेरा सिधांत सिद्धा, पुज्जे अखीर बन्ने।
(सीधा सादा मेरा सिद्धान्त है, आखिर सब एक ही तट पर पहुंचते हैं)
जो इक अकाल मन्ने, मन्ने, ना मैनूं मन्ने।
(जो एक अकाल को मानता है, माने, मुझे चाहे न माने)
आवे[1] ज़रूर आवे, रसते किरमे तों आवे।
(आता वह जरूर है, चाहे किसी भी रास्ते से आये)
पावे ज़रूर पावे, रसते किसे तो पावे।
(पाता ज़रूर है, चाहे किसी भी रास्ते से पाये)
दाहवा है इक तअस्सुब, उलटा इह राह भुलावे।
(जलाता तो तआस्सुब है, वह तो पथ-भ्रष्ट कर देता है)
मोमन ने सब सुजाखे, हिंदू ना सारे अन्ने।
(सब मोमिन देख सकते हैं, सब हिन्दू भी नेत्रहीन नहीं)
जो इक अकाल मन्ने, मन्ने, ना मैंनू मन्ने।
(जो एक अकाल को मानता है, माने, मुझे चाहे न माने)
गोरा या काला सौला इह रंग वन-सुवन्ने।
(गोरा हो या काला-सांवला, यह विविध रंगों में है)
हर रंग विच उह वस्से, रहिंदा है फेर बन्ने।
(हर रंग में वह बसता है, और रंग से अलग भी)
आपे बणाउंदा है, आपे चाहे ते भन्ने।
(आप ही बनाता है, चाहे तो आप ही तोड़ देता है)

जिसु दुआरै उभरै तितै ले

उह लभ लिआ सी वेखो, पत्थर दे विच्चों धन्ने ।
(उसे पा लिया था पत्थरों के बीच धन्ने ने...धन्ना जाट ने)
जो इक अकाल मन्ने, मन्ने, ना मैंनूं मन्ने ।
(जो एक अकाल को मानता है, माने मुझे चाहे न माने)
है पसरिआ चुफेरे, उहदा पसार सारे ।
(चहुं और उसका फैलाव है···सब कही उसी का प्रसार है)
उहो है हेठ-उत्ते अंदर ते बाहर सारे ।
(वही नीचे और ऊपर है, अंदर और बाहर सब जगह है)
दस्सण उसे दी कुदरत, जंगल-पहाड़ सारे ।
(उसी की महिमा को दर्शाते हैं, ये सभी जंगल और पहाड़)
उहदे बिनां इह जाणों, उज्जड़े दुआर बन्ने ।
(उसके बिना यह समझ लो···उजड़ जाते हैं घर-द्वार)
जो इक अकाल मन्ने, मन्ने, ना मैंनूं मन्ने ।
(जो एक अकाल को मानता है, माने, मुझे चाहे न माने)
शांती दा घर है मज़हब, मल्लां दा नहीं अखाड़ा ।
(धर्म शान्ति का घर है – पहलवानों का अखाड़ा नहीं)
इत्थे ना पहुंच सक्के, दूरे, दवैत, साड़ा ।
(यहाँ नहीं पहुंच पाती, दुई, द्वैत और ईर्षा)
हद्द एस दी सचाई, सच्च एस दा है वाड़ा ।
(इसकी सीमा सच्चाई है, सत्य इसका निवास है)
निसचा टिका के टिके, वहदत दे पीवे छन्ने ।
(स्थिर हैं जिसके इरादे, पीता है जो वहदत के प्याले)
जो इक अकाल मन्ने, मन्ने, ना मैंनूं मन्ने ।
(जो एक अकाल को मानता है, माने, मुझे चाहे न माने)
सभ पुतलीआं नचांदा, इक्को उह तार वाला ।
(सभी कठपुतलियों को नचाता है, वही एक सूत्रधार)
रस देवंदा है जड नूं, इक्को बहार वाला ।
(रस देता है जड़ को वही बसंत-बहार का सृजनहार)
गुण उसदे ने सारे, उहो भंडार वाला ।
(सब उसी की विशेषताएं हैं, वही भंडार का स्वामी है)
उसे ने रस रसाइआ, भरिआ जो विच गन्ने ।
(उसी ने उस रस की रचना की जो भरा है ईख में)

जो इक अकाल मन्ने, मन्ने, ना मैंनूं मन्ने।
(जो एक अकाल को मानता है माने, मुझे चाहे न माने)
है बीज दी ही बरकत, पर बीज किस उगाइआ ?
(सब बीज की ही महिमा है, पर बीज को किसने उगाया ?)
अकलां दे चमतकारे, पर अकल किस सिखाइआ ?
(सब बुद्धि के चमत्कार हैं, पर बुद्धि को किसने सिखाया ?)
असलूं हैं मूल किहड़ा ? आइआ, कि जो लिआइआ ?
(वास्तव में मूल कौन सा है, जो आया है अथवा जो उसे लाया है ?)
जढ़ तो बगैर उपजन न डालीआं न तन्ने ।
(जड़ के बिना न तो डालियां उपजती हैं न तने)
जो इक अकाल मन्ने, मन्ने, ना मैंनूं मन्ने ।
(जो एक अकाल को मानता है, माने, मुझे चाहे न माने)
पंछी जनौरां सबजी, कुदरत बनाए जोड़ा ।
(पशु-पक्षी, वनस्पति---इसी की देन हैं, प्रकृति ही सब मेल मिलाती है)
इक्के बिरछ दे फल ने, मिट्ठा ते कोई कौड़ा ।
(एक ही वृक्ष के फल हैं, कोई मीठा है तो कोई कड़वा)
परबत है या कि तीला, कोई नहीं बिल्लोड़ा ।
(पर्वत हो या कि तिनका, कोई वस्तु बेकार नहीं)
दरसाउंदे ने एहो, कुदरत दे सभ इह पन्ने ।
(यही सब दर्शाते हैं, प्रकृति के खुले हुए पन्ने)
जो इस अकाल मन्ने, मन्ने, ना मैंनूं मन्ने ।
(जो एक अकाल को मानता है, माने, मुझे चाहे न माने)

वतन को पूजूँ या वतन वालों को ?

रिहा हां वतन दा हुण तक पुजारी । नहीं उत्तरी अजे तक वी खुमारी । लंघे शाइद इवें ही उमर सारी । मगर परबल्ल है इक सोच जारी ।	अब तक मैं देश-भक्त रहा हूँ । आज तक इसका नशा नहीं उतरा है । शायद इसी तरह सारी आयु कट जाए । मगर अभी तक यह प्रबल सोच जारी है ।
मेरे जज़बे इह जानण नूं ने काहले:	मेरी भावनाएं यह जानने को आतुर हैं ।
वतन पूजां कि पूजां वतन वाले ?	देश की पूजा करूं या देशवासियों को पूजूं ?
वतन मेरा बेशक्क मेरी जगीर ए । मेरी आतमा दा इह सरीर ए । इत्थों ही आदि मेरा, इही अख़ीर ए ।	बेशक मेरा देश मेरी जागीर है । वह शरीर है जिसमें मेरी आत्मा है इसी से मेरा आदि है और यही मेरा अन्त है ।
मैंनूं एस दा दलीआ वी खीर ए ।	मेरे लिए इसकी सूखी रोटी भी राज-भोग है
पता नहीं फिकर होई किउं दुआले:	फिर न मालूम क्यों यह चिंता मुझे घेर रही है
वतन पूंजा कि पूजां वतन वाले ?	देश की पूजा करूं या देशवासियों को पूजूं ?
वतन वाले दे मन विच जो हरारत ! ना समझे एस नूं कोई शरारत ! बुझण योग है इह इक बुझारत । इक दी झोंपड़ी, इक दी अमारत ।	देशवासी के मन में जो हरारत है इसे कोई शरारत न समझे बूझने योग्य है यह बुझारत एक के पास झोंपड़ी है और दूसरे के पास विशाल भवन
सुआल इस वितकरे ने कई उठाले । वतन पूजां कि पूजां वतन वाले ?	इस बड़े अन्तर ने कई प्रश्न उठाए हैं । देश की पूजा करूं या देशवासियों को पूजूं ?

वतन वाले दी ही सी उह दुहाई ।	देशवासी की ही यह फरियाद थी
वतन विच जिस नवीं सी जान पाई ।	देश में जिसने नए प्राण फूंके थे
होई सी दूर तक जिसदी सुणाई ।	जिसकी आवाज दूर तक सुनी गई थी
देसों गैर ने गठड़ी उठाई ।	और देश से विदेशी ने अपना बोरी-बिस्तर उठा लिया था ।
रिहा बाकी मगर फिर वी सुआल ए:	मगर फिर भी यह प्रश्न शेष है
वतन पूजां कि पूजां वतन वाले ?	देश की पूजा करूं या देशवासियों को पूजूं ?
इउं जाये जिवें कोई चोभ चुम्भे ।	यूं प्रतीत होता है जैसे कोई चुभन हृदय को साल रही है
है सिद्धा तीर, विच सीने दे खुभ्भे ।	सीधा तीर है जो सीने में आकर चुभ गया है
घुम्मण-घेरीआं विच मन डुब्बे ।	एक भंवर में मन चक्कर काट रहा है
पैदा हो गए हिरदे'च शुब्हे	हृदय में कई सन्देह पैदा हो गए हैं
हुणे कहिंदे ने, निरणा इह कराले ।	कहते हैं कि अभी यह निर्णय अभी करवाले
वतन पूजां कि पूजां वतन वाले ?	देश की पूजा करूं या देशवासियों को पूजूं ?
वतन वाले दे मुढ़के दी तरावत ।	देशवासियों के मेहनत के पसीने को
वतन सक्खीया कहे जिसनूं सख़ावत ।	मेरा देश एक दान मानता है ।
न कोई दुशमणी, कोई अदावत ।	न दुश्मनी है किसी से न शत्रुता
कोई रोणा कहे, कोई बगावत ।	कोई इसे रोना कहता है तो कोई विद्रोह
इह परगट हो रहे अरमान पाले ।	इस प्रकार पले हुए अरमान प्रकट हो रहे हैं
वतन पूजां कि पूजां वतन वाले ?	देश की पूजा करूं या देशवासियों को पूजूं ?
वतन दे ढिढ़ विच खाणा लुकाईआं ।	देश ने अपने उदर में खानें छिपा रखी है
वतन वाला दए भुक्खा दुहाईआं ।	और देशवासी भूख से फरियाद कर रहा है ।
वतन दे पैर विच नदीआं समाईआं ।	देश के चरणों में नदियां इठलाती हैं
वतन वाले दीआं बुल्लहीआं तिहाईआं ।	पर देशवासियों के ओठ प्यासे हैं

वतन वाले दे नहीं कुझ वी हवाले ।
वतन पूजां कि पूजां वतन वाले ?

देशवासी के पास कुछ भी तो नहीं है
देश की पूजा करूं या देशवासियों को पूजूं ?

वतन दे पौण-पाणी विच तासीरां ।
वतन वाला है मरदा नाल पीड़ां ।

देश की जलवायु में बड़ा असर है
लेकिन देशवासी है कि पीड़ा से मर रहा है

वतन तां पैर रक्खदा विच अमीरां ।

देश तो धनी पूंजीपतियों में कदम रख रहा है

वतन वाले दा झग्गा लीरां-लीरां ।

लेकिन देशवासी के कपडे चिथड़ा-चिथड़ा हैं ।

इह पूंजी पूजीए जां लोड़ वाले ?

इस पूंजी की पूजा करें या इन ज़रूरत मंदों की

वतन पूजां कि पूजां वतन वाले ?

देश की पूजा करूं या देशवासियों को पूजूं ?

वतन दे जिसम विच है आतमा इह वतन वाला
वतन दे फुल्ल विच है वाशना इह वतनवाला
वतन दी अक्ख विच प्रकाश नां इह वतनवाला
वतन बुड्ढे दी समझो ढासना इह वतनवाला
वतन वाले नूं की कोई वतन तो वक्खरा वखाले ?
वतन पूजां कि पूजां वतन वाले ?

देश की काया में देशवासी आत्मा-स्वरूप है
देश रूपी फूल में देशवासी उसकी सुगन्ध है
देश की आँखों की ज्योति देशवासी ही हैं
वतन अगर बूढ़ा है तो उसका सहारा यह देशवासी है
देशवासी को कोई देश से अलग करके दिखाये ?
देश की पूजा करूं या देशवासियों को पूजूं ?

असल विच वतन वाला ही वतन है ।
वतन-माला दा मणका इह रतन है ।
वतन जो कुझ वी है इस दा यतन है ।

वास्तव में देशवासी ही देश है
देश रूपी माला का दाना यह रत्न है
आज देश जो कुछ भी है, इसी के प्रयत्न स्वरूप है

निरा जज़बा नहीं, सच्चा कथन है ।
बणाई जिसने राए सो बणा ले ।
वतन पूजां कि पूजां वतन वाले ?

यह कोरी भावुकता नहीं, एक तथ्य है ।
जिसने जो राय बनाई है, बनाता रहे ।
देश की पूजा करूं या देशवासियों को पूजूं ? (1956)

अलग-अलग, बूंद-बूंद

वक्खरा, वक्खरा
कतरा, कतरा
मिलिआ, मिलिआ
सागर, सागर
वगदे वगदे नदीआं नाले,
हौले वहिण जां वग्गण काह्ले—
वग्गदे रहिण
ता सागर ही हुण ।
छप्पड़, ढठ्ठा—
वहिणां विच्चों
वक्खरे हो के
खड़े तरक्कण,
तप्पण,
खा के फेर उबाले
उड्डण,
परबत दीआं चुपेड़ा खा के
फेर परत्तण,
मुड़ वग्गदे दी संगत रलदे
हुंदे तां परवान,
वक्खरा, वक्खरा
कतरा, कतरा
मिलिआ, मिलिआ
सागर, सागर ।
मिले परदेश
तां बणिआ देश,
देश मिले
बण गिआ जहान,

अलग, अलग
बूंद, बूंद
मिल कर ही
सागर बनता है
बहते हुए नदी नाले
चाहे धीरे बहते हों या तेज़—
अगर बहते रहें
तो सागर ही हैं ।
पोखर, कट कर—
धारा-प्रवाह से
विलग हो कर
पड़े सड़ते हैं,
उफनते हैं,
भाप-बन बन कर
उड़ते हैं,
पर्वत के थपेड़े खा कर
पलट कर लौट आते हैं,
फिर धारा-प्रवाह में मिल जाते हैं
तब फलीभूत होते हैं ।
अलग, अलग
बूंद, बूंद
मिल कर ही
सागर बनता है ।
अलग अलग प्रदेश आपस में मिलते हैं
तो देश बनता है,
देश आपस में मिलते हैं
तो विश्व बन जाता है,

वासी इक जहान दे सारे ।
मुलकी वंड, इलाके-बंदी—
केवल इक प्रबंध-सहूलत,
सारे इक जहान दे वासी ।
वतन पिआर दा
डूंघा जज़बा,
इक उदाहरण···
"इक इक अंग नरोआ मिल के
सारे तन दी बणदा शान ।"
सारे इक जहान दे वासी,
वक्खरा, वक्खरा
कतरा, कतरा
मिलिआ, मिलिआ
सागर, सागर
वक्खरे वक्खरे बुत्त बणाए,
इक सुचज्जे कारीगर ने ।
संग-मरमरी, चिट्टा-दुद्ध
क्रिशन-रंगीआ
कोई सांवला,
कणक वन्नीआं
कई मूरतां
नकश सुन्नखीआं
कई मूरतां,
जात-पात दे भद्दे धब्बे···
ऊच-नीच दे कोझे दाग़
निरधन, सरधन
वितकरिआं दीयां झरीटां पाके,

आप पिआ है कोझा बणदा
आपे ही इनसान ।
इक्को कारीगर है,
इक्को जिहा समिआन,
सभ जानां विच,

सब एक विश्व के वासी हैं ।
देशों का विभाजन, क्षेत्रों का विभाजन
केवल एक प्रशासनिक सुविधा है,
सब एक विश्व के वासी हैं ।
देश प्रेम की
गहरी भावना,
एक उदाहरण है···
जैसे, एक एक स्वस्थ अंग मिलकर
सारे शरीर की शोभा बनता है ।
सब एक विश्व के वासी हैं,
अलग, अलग
बूंद, बूंद
मिल कर ही
सागर बनता है,
अलग अलग मूर्त्तियां गढ़ी हैं
एक सुघड़ मूर्त्तिकार ने ।
कोई संगमरमर सा, दूध सा श्वेत
कोई श्याम वर्ण,

किसी का गेहुआ रंग
कई मूर्त्तियां हैं
तीखे नयन-नक्श की
कई मूर्त्तियां हैं,
जाति-पांति के भद्दे धब्बे
ऊंच नीच के कलुषित दाग
निर्धन और धनवान का अन्तर
भेद-भाव की खरोचों से छलनी छलनी
होकर
आप ही अपना रूप बिगाड़ रहा है ।
यह इन्सान ।
एक ही मूर्त्तिकार ने बनाया है हमें
एक ही पदार्थ से सब ढाले गए हैं,
सब प्राणियों में,

इक्को जिही है जान ।
वक्खरा, वक्खरा
कतरा, कतरा
मिलिआ, मिलिआ
साग़र, साग़र ।
मनुक्ख, मनुक्ख
मनुक्ख दे नाते
इनसान बतौर इनसान,
इनसान
सारे रंगा विच इक-रंग है,
जे कोई सके पाछण ।
वक्खरा, वक्खरा
कतरा, कतरा
मिलिआ, मिलिआ
साग़र-सागर ।
हस्सदा, हस्सदा
फल्ल टाहणी दा
मिद्ध दित्ता
मुट्ठी विच फड़ के;
निकल गिआ रस···
पै गई फोगां दी
इक पंड उठाणी,
अड्ड अड्ड हो गए
रंग, वाशना
इहनां दा ही मेल
तां फुल्ल सी ।
वक्खरा, वक्खरा
कतरा, कतरा
मिलिआ, मिलिआ,
साग़र, साग़र ।
जंग दे आशकां नूं
की ह़ासल ?
कबज़ा कुझ लाशां दा ।

एक-से प्राण हैं ।
अलग, अलग
बूंद, बूंद
मिलकर ही
सागर बनता है ।
प्रत्येक मनुष्य
मनुष्य के नाते
इंसान, इंसान के नाते
एक है ।
सब रंगों में अलग अलग रंग मिले हैं
अगर कोई पहचान सके उन्हें !
अलग, अलग
बूंद, बूंद
मिल कर ही
सागर बनता है ।
हंसता हुआ सा
टहनी पर लगा फल
भींच दिया
मुट्ठी में जकड़ कर;
रस तो निकल गया
और अब फोक का
उठाना पड़ गया है बोझ,
अलग अलग हो गए
रंग और खुश्बू
इनका मेल ही तो
फूल था ।
अलग, अलग
बूंद, बूंद
मिल कर ही
सागर बनता है ।
युद्ध के प्रेमियों को
क्या मिलता है ?
क्या कुछ शवों पर अधिकार ।

उहनां दी बदबू जद छड्डी

फिर सी नक्क लुकाई भज्जिआ
जीवन-जीवन ही है…
भावें उह किसे विच होवे,
जींवदिआं दे राह बदल दे,
जींवदिआ दे चाअ बदलदे।
जींदे वगदे पाणी वांगण
विछड़न,
विछड़-विछड़
फिर मिलदे।
वक्खरा, वक्खरा
कतरा, कतरा
मिलिआ, मिलिआ
सागर, सागर।
कतरा दरिआ,
दरिआ सागर
वगदा रहे
पर, वगदा रहे तां!

वे लाशें भी जब दुर्गन्ध छोड़ने लगती हैं।
तो नाक छिपाये भागना पड़ता है
जीवन-जीवन ही है…
चाहे वह किसी में हो
जीने वालों के मार्ग बदलते हैं,
जीने वालों के चाव बदलते हैं,
जीने वाले बहते हुए पानी की तरह हैं
वे बिछुड़ा करते हैं,
बिछुड़-बिछुड़ कर
फिर मिलते हैं।
अलग-अलग
बूंद-बूंद
मिल कर ही
सागर बनता है।
बूंद-बूंद नदी बन जाती है,
नदी सागर का रूप ले लेता है,
नदी, सागर
बहते रहें, बहते रहें
बहते रहने मे ही इनका अस्तित्व है।

(1965)

दास का मौत

जद इक सी आसान सी,
विच जिसम दे बंद जान सी,
हुण इक नही हुण दो नही,
तिन चार या पंज सौ नही,
जे पकड़ने दी लोड़ है,
समझो उह तेती क्रोड़ है,
नहीं ! एस तो वी वध है,
उहदी ना कोई हद्द है,
हुण पकड़ लौ, हुण पकड़ लौ,
पकड़ोगे की ? पकड़ोगे की ?
कीकण पछाणो उह है ?
उहदी तां केवल छुह है,
हुण जिसम नही उह जान है,
जानां दी की पहिचाण है ?
उह चल गिआ उह चल गिआ,
विच रल गिआ विच रल गिआ,
अपणी वी ज़ंजीर तक्क,
छुट्टण दी वी तदबीर तक्क ।
हुण पकड़ लौ, हुण पकड़ लौ,
पकड़ोगे की ? पकड़ोगे की ?
पक्का करो दसतूर नू,
जां फड़ लवो मफरुर नू,
इक वी नहीं, पर सभ है,
ऐसे लई दुरलब्भ है ।
मादी नहीं हुण नूर है,
पकड़न दी हद्दों दूर है,
भज्जण समें जे कहि गिआ,

जब एक था, आसान था ।
जिस्म में बंद जान थी,
अब वह एक नहीं, दो नहीं,
तीन, चार या पांच सौ नहीं,
पकड़ना चाहते हो अगर
तो समझ लो तैंतीस करोड़ है,
नही, इससे भी ज्यादा है
उसकी कोई सीमा नही,
अब पकड़ लो, अब पकड़ लो,
पकड़ोगे क्या ? पकड़ोगे क्या ?
कैसे पहचानोगे कि वही है ?
वह तो मात्र स्पर्श बन कर रह गया है,
अब वह शरीर नहीं, प्राण है
आत्मा की क्या पहचान है ?
वह चला गया, वह चला गया,
पांच तत्त्वों में जा मिला है,
अपनी भी बेड़ियां देख,
जान छुड़ाने की तदबीर कर ।
अब पकड़ लो, अब पकड़ लो
पकड़ोगे क्या ? पकड़ोगे क्या ?
मजबूत करो अपने तौर-तरीके
या मफ़रूर को पकड़ कर दिखाओ,
वह व्यक्ति नहीं, समष्टि है,
इसीलिए पकड़ना दुर्लभ है ।
पदार्थ नहीं है अब, प्रकाश है,
पकड़े जाने की हद से दूर है,
फरार होते समय वह कह गया,

मैं अहि गिआ, मैं अहि गिआ,
हुण पकड़ लौ, हुण पकड़ लौ,
पकड़ोगे की ? पकड़ोगे की ?
कतरा सी जां, खतरा सी तां
दरिआ विच्चों वक्खरा सी जां,
चलिआ जां बुत नूं तोड़ के,
फिर कौण रखदा होड़ के,
अड्ड होण दा जो खेल सी,
असल दे विच उह मेल सी,
ना औह गिआ ना अहि गिआ,
सभनां दे दिल'ते बहि गिआ,
हुण पकड़ लौ, हुण पकड़ लौ,
पकड़ोगे की ? पकड़ोगे की ?
पहिलां सी आपणी जान विच,
हुण सारे हिंदुसतान विच,
हिंदू ते मुसलमान विच,
हां, गैर दी वी जबान विच,
हन लोक कहिंदे मर गिआ,
उह बीर सी हो अमर गिआ,
जीहदा कि मन आज़ाद है,
आज़ाद उह आज़ाद है;
हुण पकड़ लौ, हुण पकड़ लौ,
पकड़ोगे की ? पकड़ोगे की ?
की फाइदा हुण जिहल दा,
की फाइदा इह खेल दा,
कड़ीआं ते कंधा भारीआँ,
होईआं निकम्मीआं सारीआं,
हुण कैद विच घुल्लांगे ना,
जिहला दे विच रुल्लांगे ना,
इह दास[1] बाबू दस्स गिआ,
दो पहिर वेले नस्स गिआ,
हुण पकड़ लौ, हुण पकड़ लौ,
पकड़ोगे की ? पकड़ोगे की ?

लो मैं यह गया, मैं वह गया
अब पकड़ लो, अब पकड़ लो,
पकड़ोगे क्या ? पकड़ोगे क्या ?
जब बस कतरा था, तब खतरा था,
जब दरिया से अलग था वह,
जब शरीर के बंधन को ही तोड़ गया,
फिर कौन जकड़ कर रख सकता था,
अलग होने का जो खेल था,
वास्तव में वह एकीकरण था,
न वह गया न यह गया,
सब के दिलों में बस गया,
अब पकड़ लो, अब पकड़ लो,
पकड़ोगे क्या ? पकड़ोगे क्या ?
पहले तो स्वयं वह एक प्राण था,
अब वह सारे हिन्दुस्तान की जान है,
हर हिंदू और मुसलमान में,
गैरों की ज़बान पर भी,
लोग कहते हैं वह मर गया,
वह वीर था, अमर हो गया,
जिसका मन आज़ाद है,
आज़ाद वही आज़ाद है,
अब पकड़ लो, अब पकड़ लो,
पकड़ोगे क्या ? पकड़ोगे क्या
अब जेल का क्या लाभ
क्या फायदा इस खेल का,
बेड़ियां और मज़बूत दीवारें,
सब बेकार हो गई।
अब कैद में घुलना नहीं पड़ेगा,
जेलों में भटकना नहीं पड़ेगा,
दास बाबू यह बता गया,
भरी दोपहरी में भाग निकला,
अब पकड़ लो, अब पकड़ लो,
पकड़ोगे क्या ? पकड़ोगे क्या ? (1929)

1. यतीन्द्र नाथ दास

गज़ल

पिआर विच गिलिआ दी चक्की झाण दा ।
(मुहब्बत में गिले-शिकवों की कहा-सुनी उसी तरह है)
हासिआं विच है सिआपा रोण दा ।
(जैसे हंसी के भीतर रोने का मातम छिपा है)
जिकर नहीं जे सोहणिआं दी सभा विच,
(हसीनों की महफिल में अगर हमारा जिक्र नहीं)
फाइदा की, होण जां ना होण दा ।
(तो फिर क्या लाभ हमारे होने का या न होने का)
निखर के उलटे उजागर होणगे,
(निखर कर उल्टे और उजागर हो जाएंगे)
लाभ नहीं ऊजां दे धब्बे धोण दा ।
(कोई लाभ नहीं है बदनामी के धब्बे धोने का)
ढूढ विच जिस दी जमाना तड़प दा,
(जिसकी खोज में जमाना तड़पता है)
सुआद उस नूं है कन्नी कतरौण दा ।
(मजा उसको आता है कन्नी कतरने में)
इशक अड्डे लग्ग गिआ है हुसन दे,
(इश्क हुस्न के वश में आ गया है)
फड़ लिआ सू कंम वगारां ढोण दा
(पकड़ लिया है काम बेगार ढोने का)
सुण लए मैं सभ निहोरे सुण लए
(सुन लिए हैं मैंने सब के सब उलाहने)
लग्ग गिआ है ठीक सूआ सौण दा ।
(अब नींद का टीका ठीक ही लग गया है)
मार गई ए मैंनुं मेरी सफलता
(मुझे तो मार डाला मेरी सफलता ने)

मैं नहीं आदी सा मन तड़पौण दा
(मैं मन को तड़पाने का अभ्यस्त नहीं था)
लोक कहिंदे ने मुसाफ़िर सुणन उच्ची लग पिए
(लोग कहते हैं 'मुसाफिर' ऊंचा सुनने लगा है)
मैं बहाना भालिआ भोरा कु नेड़े होण दा
(मैंने बहाना ढूंढ़ लिया तनिक और निकट आने का)

गज़ल

मेरिआं करमां ते करतूतां दी पुच्छ दरकार नहीं,
(मेरे कर्मों और कारनामों की जानकारी प्राप्त करने की ज़रूरत नही)
मालिका ! इह आदमी मजबूर है, मुख़तार नहीं ।
(हे मालिक ! यह आदमी मजबूर है, अपनी मन-मर्ज़ी नहीं कर सकता है)
हुसन दीवे तू जगाए, सड़ना भंवट दा गुनाह,
(सौन्दर्य के दीप तो तूने जगाए । परवाना जल गया तो उसका क्या दोष ?)
वितकरे दा फैसला, इह फैसला सरकार नहीं ।
(यह भेद-भाव का फैसला है, यह फैसला सही नहीं)
लहिर दी हसती ही मिट जांदी किनारे पहुंच के,
(लहर की हस्ती ही मिट जाती किनारे पहुंच कर)
ज़िंदगी मंझधार है, इस पार जा उस पार नहीं ।
(ज़िंदगी मंझधार है, इस पार या उस पार नहीं)
जीवणा है, हस्से के सहिणे ज़िंदगी दे हादसे,
(जीना है हंसकर, सहने हैं ज़िंदगी के हादसे)
मौत है नींदर सुखावी, कंम जो दुशवार नहीं ।
(मृत्यु एक सुखद नीद है, काम जो कठिन नहीं है)
वेख तेरे वगदे, हंझू, आपणे मैं पी गिआ,
(देख कर तेरे बहते हुए आंसू, मैं अपने अश्रु पी गया)
तेरी जित्त वी हो गई, मेरी वी होई हार नही ।
(तेरी जीत भी हो गई, मेरी भी हार नहीं हुई)
राहनुमा मेरा रिहा, मेरे गमां दा काफ़ला,
(मार्ग-दर्शक मेरा रहा है, मेरे गमों का काफ़िला)
प्रेम-राह दा मैं मुसाफ़र, मेरे सिर कोई भार नहीं ।
(प्रेम पथ का मैं यात्री हूं, मेरे सिर पर कोई बोझ नहीं)
इशक दा सागर ए डूंघा, बहुत डूंघा वी नहीं
(इश्क का सागर गहरा है, लेकिन बहुत गहरा भी नहीं है)
पार करना फिर वी औखा, इस दा पारावार नहीं
(पार करना फिर भी कठिन है, इसका पारावार नहीं)

ज़िंदगी जीवन दा नां है, उमर दे सालां दा नहीं,
(ज़िंदगी नाम है जीने का, जीवन के वर्षों का नहीं)
चार दिन दी ज़िंदगी तों भाव तुक्का 'चार' नहीं।
(चार दिन की ज़िंदगी को मोल-तौल करके मत टाल)
हुण मसां किधरे असानूं आई ए जीवन दी जांच,
(अब कहीं मुश्किल से जीने का ढब सीखा है)
आपणी इह कलपना है, वैसे कुझ इतबार नहीं।
(अपनी यह कल्पना है, वैसे कुछ विश्वास नहीं)

रुबाईयां

मेरी छाती ते किउं कसनैं
इह तिक्खिआ संगीना ?
तेरे ही वस्सण दा घर है,
सज्जण ! मेरा सीना ।
डर है किधरे तेरीआं चोभां
तैनूं ही ना लग्गण
इक दूजे उत्ते है निरभर
तेरा मेरा जीणा ।

मेरी छाती पर क्यों तानता है
ये तीखी संगीनें ?
तेरे ही रहने का घर है,
साजन ! मेरा सीना ।
डर है कहीं तेरी यह चुभन
तुझे ही पागल न कर दे
इक दूजे पर निर्भर है
तेरा मेरा जीना

चंगा होइआ जग्ग ने मैंनूं
समझ लिआ दीवाना ।
इस इक गल्ल ने मेरे गलों,
लाहिआ कुल ज़माना ।
हर कोई आखे पागल है इह,
इस दा दोष ना कोई;
कितना सोहणा मिलिआ मैंनू
आपणे आप बहाना !

अच्छा हुआ जो जग ने मुझको
समझ लिया दीवाना ।
इस इक बात ने मेरे गले मे
सारे ज़माने को उतार फेंका
हर कोई कहता है पागल है यह,
इसका कोई दोष नहीं है
कितना अच्छा मिला है मुझको
अपने आप बहाना

जागे नगमे अते जगाईआं,
सुत्तीआं सुरा सितारां ।
आदम सुण के पंछी जागे,
रौणक विच गुलज़ारां ।
"मैं गुलचीन' खौफ़ पत्त-झड़ दा,
डर बिजली दा सिर' ते";
कितने खतरे लै के आईआं
खुशीआं नाल बहारां ।

नगमे जागे और जगा दिए
सुप्त-स्वर तंत्री के
आगमन की सूचना सुन कर पंछी जागे
बागों में रौनक आ गई
"गुलचीं का डर, पतझड़ का खौफ़
सिरों पर बिजली गिरने का भय
कितने खतरे लेकर आई है
खुशियों के संग बहारें ।

कीते पाठ, निमाज़ां पढ़ीआं,	पूजा पाठ किए, नमाज़ें पढ़ीं
रब्ब नू खूब धिआइआ ।	ईश्वर का खूब स्मरण किया
मंदर, मसजिद, गुरु-दुआरे,	मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे,
जा जा के जस्स गाइआ ।	जा जा कर यशोगान किया ।
हरि मंदर हर जन दा हिरदा	हरि मंदर, हर मनुष्य का हृदय है
जे टुट्टा तां समझो;	अगर यह टूट गया तो समझो
इक मंदर दी पूजा कीती	इक मंदिर की तो पूजा की
इक मंदर नू ढाहिआ ।	और इक मंदिर को ढा दिया ।

हिरदे विच लुकी होई शै नू	हृदय में छिपी हुई वस्तु को,
ढूंढे विच असमानां ।	आसमानों में ढूढ़ता फिरता है
इक हकीकत नू खुद बंदा,	एक हकीकत को खुद मनुष्य
दए बना अफ़साना ।	अफसाना बना देता है ।
उस वेले तक्क रब्ब वी तां,	उस समय तक ईश्वर भी तो
इक बणिआ रहे बुझारत;	एक पहेली बना रहता है
बुझ नही लैणा जद तीकण	पहचान नहीं लेता है जब
इनसानां नूं इनसानां ।	एक इंसान को दूसरा इंसान

धरती उत्ते बैठे बैठे,	धरती पर बैठे बैठे
चंन चढ़ा लए जाणेआं ।	मनुष्य ने नए चांद बना डाले
पाणी मिणिआ पौण वी मिणलई,	पानी को नापा, पवन को भी नाप लिया उसने
ज़र्रे-ज़र्रे नू गिणिआं ।	अणु-अणु को गिन डाला ।
कुदरत नाल लगा के अड्डा,	प्रकृति को देकर चुनौती
कई नवे राह कड्ढे;	कई नए मार्ग प्रशस्त किए
अजे जाणनां बाकी: बंदा	अभी यह जानना शेष है,
किस मिट्टी दा बणिआ ।	किस मिट्टी का बना मनुष्य है ।

[ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर की कुछ अन्य कविताओं का हिंदी रूपान्तर]

मेरा वतन

मेरा देश
विशाल तो है ही
उपलब्धियों का घर भी है
प्राकृतिक सम्पदा से भरा-पूरा
फाड़-फाड़ कर आंखें देखता हूं
मेरे वतन में
क्या कुछ है
लेकिन सबके लिए नहीं है।
गहरे विशाल सागरों के तल में
सच्चे मोती जिन्होंने छिपाये।
मंद-मंद बहती नदियां
हों मानो बिखरी बिखरी—
पिघली पिघली चांदी।

धरती सोना उगलती
घने-घने हैं इसके वन
सुखदायी वृक्षों की छाया
सेहत मंद-जड़ी-बूटियां जहां उगती हैं
जीवन दायी पवन
पंच कल्याणी दुधारु भैंसे
और गोरी-भूरी गऊएं
पर्वत पहरेदार
पत्थर, हीरे की खानें।

एक एक खान जो मेरे देश में है
गिनगिन कर बताऊं, स्वाभिमान के साथ।
देश में मेरे
क्या कुछ नहीं है

सब कुछ है—
लेकिन सबके लिए नहीं है
दीपक बुझ रहे है
पर तेल से कुएं भरे हैं
सब कुछ होते हुए भी
तरस रहे हैं
कभी नहीं कोई फिर भी अभावग्रस्त हैं ।

विशाल है मेरा देश
कोई समय था
सोने की चिड़िया समझ
बन्द कर रहे थे पिंजरे में
विदेशी साम्राज्यवादी जिसे ।

अब तो यह बहाना नहीं रहा
किसे दोषी ठहरायेंगे आज हम
असल में
हकीकत यह है
एक तो भूखा है
और दूसरा ऐसा कि पेट ही नही भरता उसका ।

विशाल है मेरा देश
दम फुला देने वाले ऊंचे-ऊंचे टीले हैं जिमके
भुरभुरा कर गिर जाएं तो
खाइआ पट जाएं मिट्टी से
हो जाएं हमवार रास्ते
समतल राहों पर चलने से
सांस नहीं फूलता
ठोकर नहीं लगती चलते चलते ।
मेरा देश विशाल ।
जो कुछ है इसका
है उसमें सबका हिस्सा
यह है सबका साझा देश
जीवन-धारा में इसकी
सांस मेरी भी शामिल है

यह है सबका साझा देश
एक, एक, एक
अकेले का भी।
देश में मेरे
क्या कुछ नहीं है ?
सब कुछ है
पर सबके लिए नहीं है। (1974)

आ सजनी ! खो जाएं

आ सजनी ! खो जाएं ।
किसी कुराह पड़ें हम ऐसी
न कोई देखे, न कोई पूछे—
"किधर जा रही हो, दीवानी !"
पगडंडी-पगडंडी आंख बचाकर
दबे पांव
धीरे धीरे
छिप-छिप कर
चलते जाएं कभी तो झट-पट
और कभी रुक जाएं झट-पट
आ सजनी ! खो जाएं ।
चीड़-सरु जो
बढ़ते जाएं
ऊंचे-ऊंचे
हमें न भाएं
इधर-उधर जो हाथ पसारें ।
घनी झाड़ियों में से गुज़रें
नीचे झुक-झुक,
और चाहें तो चलें रेंग-कर
जी चाहे तो उड़-उड़ जाएं
आ सजनी ! खो जाएं !
"गए हैं खो हम"—यह चिंता भी
इक पल दो पल छोड़ें ।
खोना है तो सचमुच
खो जाएं
अपना आप भुलाएं ।
इक-दूजे को नज़र न आएं

ऐसे घुल-मिल जाएं ।
रोज़ रोज़ का मिटे भटकना
एक बार कुछ ऐसे गुम हों ।
आ सजनी ! खो जाएं ।
किसी कुराह पड़े हम ऐसी
न कोई देखे, न कोई पूछे :
किधर जा रही हो, दीवानी ।

सत्ताईस मई

सन उन्नीस सौ चौंसठ--
सत्ताईस मई की
चढ़ती दोपहरी को, दो बजे ही
काली रात उतर आई भू पर ।
शाम कुछ धुंधली-धुंधली सी ।
आसमान कुछ मैला-मैला सा ।
आज किसी अशांत को शांति मिली है,
और हो गई है सारी दुनिया अशांत,
हिल उठी है सारी खुदाई ।
जागते रहने का था जिस पर दायित्व
वह सो गया,
अब जागना पड़ेगा
हर किसी को ।
तारे भी तो नहीं हैं आकाश पर—
नींद न आए तो कोई क्या करे ?
रात है कुछ धुंधली-धुंधली सी,
आसमान है कुछ मैला-मैला सा ।
अब जागते रहना होगा सबको—
न जाने कब तक ?
सब को सुख की नींद सुलाने वाला
सो गया खुद ।
सब की नींद ले कर
सो गया वह ।
जागते रहना होगा सबको—
न जाने कब तक ?
रात कुछ धुंधली-धुंधली सी,
आसमान कुछ मैला-मैला सा ।

सत्ताईस मई

तारे भी नहीं हैं, जिन्हें कोई गिन सके
नींद न आए तो कोई क्या करे ?
सबका बोझ जिन कंधों ने
निरंतर उठाए रखा,
थक गये हैं वे कंधे आज,
तो कोई अनहोनी नही है यह
बोझ उठाना पड़ेगा अब सबको,
भर भर कर निश्वास, बहा कर अविरल अश्रुधारा—
बोझ यह अब आंसुओं से धुलेगा नहीं,
घटेगा नहीं।
रात है कुछ धुंधली-धुंधली सी
आसमान है कुछ मैला-मैला सा।
प्रगति शील वह पथ प्रदर्शक
लौट कर नही आएगा अब उस रूप में।
नाप कर मंजिल, तय करके अपने लक्ष्य
चल पड़े फिर वे मुसाफिर,
और बहुत बड़ा फासला बीच में पाकर चढ़ गए ऊपर
वह ऊपर नहीं चढ़ा
हो जाए जिससे वह स्वयं ऊंचा।
नभ पर उगा चांद धरती के लिए है,
आकाश का सूर्य भी धरती के लिए है,
ये इतने ऊंचे हैं इसलिए कि दूर तक
पहुंचा सके अपनी रोशनी
निचले से निचले कोने तक
प्रकाश फैलाने के लिए।
ठिठुरते हुए प्राणों को कुछ
गर्माहट पहुंचे···
यही उद्देश्य है इनका,
यूं ऊंचे होने का।
रात बेशक धुंधली-धुंधली है।
आसमान कुछ मैला-मैला सा है
तारे दिखाई नहीं देते
लेकिन बुझती नहीं इनकी रोशनी।

ये काली घटाएं, कुछ देर के लिए
बेशक छिपा लेती हैं चांद को भी।
रात कुछ धुंधली-धुंधली सी है
आसमान है कुछ मैला-मैला सा।
जगमगा रहा है पीछे उनके--
उसी प्रकार उनका प्रकाश
माणिक मोती तौले नहीं जाते
हीरे-जवाहर भी यूं नहीं बिकते
हाथों की मुट्ठियों में भर-भर कर।
सच, न्याय, तप, वीरता,
त्याग—
है अपना सर्वस्व न्यौछावर करने का उदाहरण।
सदा जीवित रहता है जो
यही है असली जवाहर लाल।
इसके जीवन आदर्शों में है कोई अनूठा स्पर्श
मुट्ठी भर हाड़ मांस की काया से
कभी मोह नहीं पाला उस ने।
राख और मिट्टी बन कर बिखर गया वह
ज़रूरतमंदों के लिए जिसमें से
फूटेंगे जीवन के बीज।
तारे नहीं आकाश पर
आज रात है धुंधली—सी,
लेकिन छलकती-उमड़ती पड़ रही है।
इस चांद की चांदनी।
फूल कुम्हलाता है···
सुगंध उसकी व्याप्त हो जाती है वातावरण में।
रात है धुंधली-धूंधली सी
आसमान कुछ मैला-मैला सा हैं
तारे नहीं, पर जगमगा रही है
उनकी रोशनी। (1964)

वियतनाम

वियतनाम में
बरसाई आग का
धुंआं
फैला है संसार में
वियतनाम की आवाज अब
संसार की आवाज़ है—
समाजवादी एकता
अमन की है ज़िंदगी
मौत है
जंग-बाज़ की
हिल गए स्तंभ
साम्राज्यवाद के महल के ।
आहों में भरा
बारूद है,
आंसुओं के आग है ।
"पांव तले रौंदी गई बरफ
धर लेती है पत्थर का रूप"
हक़ के लिए मरना—
दृढ़ता
देश की रक्षा हेतु
संघर्ष—
एक साहस का कदम,
ऐसी अशांति भी
साधन शान्ति का ।
वियतनाम में
नहीं हो रहा है रक्तपात
विश्व-शान्ति का

संदेश लिखा जा रहा है।
जंग-बाज़ की जीत भी
एक पराजय है,
जंग के व्यापारी का
सौदा (माल)--
लाशों का ढेर।
किसी को मारने के वसीले
ढूंढ़ना—
अपने मरने का सामान
यह चिंगारी जितनी भी
सुलगेगी,
इसे भड़काने वाले को ही
इसकी आंच
सहनी पड़ेगी।
यह कवि का ही
विश्वास नहीं,
हक की आवाज़ है,
मनुष्यता की
फरियाद है
वियतनाम की आवाज़
अब संसार की आवाज है।

(यह कविता जी० डी० आर० (पूर्वी बर्लिन) में आयोजित विश्वशांति सम्मेलन के अवसर पर रेडियो पर इसके अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रसारित की गई थी। (1969)

लेनिन को समाधि पर

चुपचाप
शांत वातावरण,
दबे पांव चलती
लंबी एक कतार,
स्निग्धता पूर्ण सम्मान--
झलकती है स्पष्ट
हर एक चेहरे से।
लेकर प्राण-चेतना जिससे
हुआ प्राणवान सारा देश
पड़ा स्वयं
निष्प्राण नहीं वह।
हुए समाहित सब प्राणों में
उसके प्राण,
जगाकर देश को समग्र
सो रहा है वह अब।
गुथे हुए हारों में
ये सुर्ख फूल
भेंट किए जा रहे हैं जिसे
उसी से ही तो इन्हें
मिली है रंगत।
इनमें खुशबू—
जो स्वयं उसकी है
उसी को समर्पित है।

चूर-चूर कर दिया था जिसने
साम्राज्यवाद का महल—
ज़ारशाही का दुर्ग,
कर्मयोगी

चुप है क्यों ?
अलग-अलग हुआ करते हैं ।
तौर तरीके—
निर्माण के और विध्वंस के ।
चुप है, किन्तु
लग गई है आज
एक एक बच्चे के
मुंह में
बस उस की ही ज़बान :
"शांति में ही है
मानवता का कल्याण
जो चाहो निर्माण विपुल हो
शांति अपेक्षित इसके वास्ते
और जरूरत है विवेक की
चिन्तन की गहराई जिस में"
और भाषा में खामोशी की
होती है साकार कल्पना :
भलाई मानव मात्र की—
छिपा शांति में ही
रहस्य इसका ।
जिंदगी भर
दम नहीं लिया जिसने
साँस अब उसकी
जा मिली है
सब साँसों में ।
नहीं है बेदम वह
और चुप भी नहीं,
एक फूल है वह
स्वयं बोलती है खुशबू जिसकी
एक फूल है वह
फैलती है खुद खुशबू जिसकी । (1969)

अमरीका
1990

पा लिया मौत पर काबू
रहने और चलने फिरने के लिए
जगह नहीं मिल रही है
उपग्रह और भी खोज लिए हैं
उपभोक्ता वस्तुओं की
कमी पड़ गई है ।
तंग आकर जो लोग
बसने के लिए
भागे थे चांद की ओर
बीच अधर में लटक रहे हैं ।
मनों अनाज
जरूरत मंदों को भेजने वाला
महसूस कर रहा है जरूरत
स्वयं अनाज की ।
नदियों झीलों के जल
मोड़ दिए खेतों की ओर
लड़के लड़कियों
ने शोर मचाया :
जाता रहा मजा
हमारे जल-विहार का ।
नहाने के सूटों के व्यापारी
हुए निकम्मे
धरना दिए बैठे हैं ।
सागरों में जल खत्म हो गया
माल का निर्यात नहीं हो रहा
बड़े बड़े लखपति

हुए बेहाल
हाथ पर हाथ धरे हज्जाम (नाई) बैठे हैं
कोई बाल नहीं कटवाता है
लोगों का ध्यान
अपनी ओर मोड़ने के लिए
एक नया ढब है यह
अच्छा समझने लगीं लड़कियां
फिरना नंगे पांव
मर्द खुश हैं
क्यों ?
अच्छी-भली
बीवियां भी
कई बार
दिखा देती थीं जूतियां !
परेशान हैं मोची
कपड़े-लत्तों की बहुत मुहताजी
छोड़ दी है लड़कियों ने
ठप हो जाने को विवश
कपड़े की
बड़ी-बड़ी मिलें
वैसे भी तंग थे
कारखानों वाले (उद्योगपति)
बिजली की है कमी
जल खेतों की ओर मोड़ दिया गया है
अवरुद्ध हुए
जलप्रपात
जो बिजली उपजाते थे
बड़ी बड़ी बीमारियों की दवा तो मिल गई
पर छोटे छोटे रोगों की ओर ध्यान देना छोड़ दिया
मौत पर काबू पाने की दवा जब से हाथ लगी है
रोगी औषधियां ही नहीं लेते
बड़े बड़े अस्पतालों में
मरघट जैसे शांति है

डाक्टर बैठे-बैठे
जम्हाईआं ले रहे हैं
भोजन का अनुकल्प
और मौत पर काबू पाने की दवा ढूंढते ढूंढते
सूझी यह बात
जन्म पर रोक लगाने की ।
जाने का द्वार बंद,
आने को खुला,
भीड़ ही भीड़ गई है फैल
दुर्घटनाओं का डर
निरन्तर बना हुआ,
कुदरत पर काबू पा कर
जब से रोका मृत्यु को
बाहर गये हुए अमरीकी लोग
अपने घरों को लौट रहे हैं
मौत समुद्र के उस पार है
लौट रहे हैं सब
इसलिए इस पार
अब कोई नहीं जाता वियतनाम
न कोई कंबोडिया जाता है
इज़राइल—
हथियारों के कारखाने
बंद हो गए
अमरीका में
मरने पर रोक है ।
कठिन है तो जीना
बूढ़ों की
तैयार हो गई है एक फौज
एक तरफ से खर्च कम हुआ था
अब दूसरी तरफ से दुगना-तिगना
बढ़ गया
इस जीवन से मृत्यु है भली
वैज्ञानिकों ने मुसीबत मोल ले ली है अपने सिर

जब से उड़ गया है
मौत का है
ज़िंदगी से सब लापरवाह
मौत की उलझन किसके लिए है ।
कई तरह की समस्यायें उठ खड़ी हुईं
सोच के फिर
पंख उग रहे हैं
करनी होगी अब एक उल्टी तैयारी
अच्छा है
कार खड़ी करने की
कहीं भी नहीं मिलती
जगह ।
लिफ्टें रुक जाती हैं
बीच अधर में
न उधर के रहे
न इधर के
इसको कहते हैं
जीत कर हारना
चांद पर जब
कमन्द डाली थी
लड़के लड़कियों ने
नहीं था
इतना बुरा मनाया
शीतल चांद के पुजारी कम हैं
इच्छाएं बढ़ती गईं
मुंह दिया सूरज की तरफ मोड़
जब सूरज भी काबू में आ गया
धूप सेंकने का मज़ा खो दिया
छोटी बड़ी हर उम्र की औरत
गेहुएं रंग की अत्यन्त इच्छुक है
अपनी सफेद त्वचा से तंग आ गई है
धूप सेंक कर अपना
रंग गेहुआँ बना रही है

लगती हैं मानो
हिन्दुस्तानी हों
वैज्ञानिक उड़ा कर
सूरज ले गए
अमरीकन लड़कियों के चाव
जहां थे वहीं रह गए
गुप्त-सूचना देने के
यंत्र निकल आए हैं
स्त्री-पुरुष के निजी भेद
जो चाहे वह
घर में बैठा बैठा ही
अपने आप पा लेता है ।
न कोई परदा है
न कोई सुख की सांस ले सकता है ।
घर घर में
ईंट से ईंट बजती है
वाह भई वाह
मुश्किल में पड़ गए हैं रात्रि-क्लबों वाले
ठप हो गया उनका धंधा
उनमें जाने के लिए
कोई पैसे क्यों खर्च करे
बाहर जो घूमती है
हर कोई नंगी
एक के लिए जो बात
बुरी मालूम होती है
दूसरे के लिए वही है अच्छी
पैसे ले कर अपनी नग्नता का प्रदर्शन करती हैं
भाग भाग कर लोग देखने जाते है
मुफ्त में
केवल तन की ही नहीं
देखने की कोई भी बात नहीं रही
सब हो गई हैं एक-सरीखी
एक मौत का डर क्या जाता रहा

सब ताना बाना ही बिखर गया
जो अनजान हैं वे फिर भी आराम में हैं
जो जानते हैं कठिनाई उनकी है बहुत
जो कम जानते हैं वे कुछ और जान सकते हैं
जो जान गए हैं वे भूल नहीं सकते अपने ज्ञान को
आगे बढ़ने के लिए जगह नहीं रही
और वापस मुड़ना वैसे ही मुश्किल है
बाहर दूर दूर
जगहों के लिए लड़ा करते थे पहले
चाहे तब भी थे
मरा करते
लेकिन मरते थे जीने के लिए ही
बढ़ाने के लिए
अपने देश की सीमाएं
अब तो और ही मुसीबत गले आ पड़ी,
उलझ गया है
अपने घर का ही ताना-बाना
बुद्धि की उतनी ही मिट्टी खराब हुई है
जितनी दूर बुद्धिहीनता रह गई है
आगे बढ़ने के लिए
ऊंचे उड़ने के लिए
कई वर्ष थे लगाए
लक्ष्य पर पहुंच कर
तय की हुई मंजिल पर
अब और ही कुछ सोचना पड़ गया है
आज बैठ कर
वैज्ञानिक
यह अनुमान लगा रहे हैं
कितना समय लगेगा
पीछे जाने में
अब कहां हमें
रुक जाना चाहिए।
सब कुछ उलट पलट गया है

जो काले थे वे गोरे दिखाई दे रहे हैं
और जो गोरे थे वे काले,
जो काले हैं उनकी बगल में
गोरियां हैं
गोरों के साथ कोई काली नहीं
चमक रही है काली की लालिमा
गोरी ज़रा-सी पीली पड़ गई है
धूप की उसे ज्यादा ज़रूरत है
और सूरज है कि उसे नियंत्रण में किया जा चुका है।
लौट सकती हैं क्या
बढ़ती हुई इच्छाएं ?
लौट सकता है क्या
सोच विचार का प्रवाह ?
समय तो लौट कर
वापस नहीं आता
संघर्ष प्रकृति के विरुद्ध है
देखते हैं जीतता है कौन ?

उपसंहार

ज्ञानी गुरुमुखसिंह "मुसाफिर" के जीवन पर एक विहंगम दृष्टि

जन्म 15 जनवरी, 1899 को सुहां के किनारे पोठोहार के अधवाल नामक गांव में हुआ। ज़िला कैलमपुर। तीन बहनों के बाद पहला भाई होने के नाते, जिस कोठरी में उनका जन्म हुआ, उसकी छत में छेद करके उसमें से बच्चे को निकाला गया।

पिता : भाई सुजानसिंह। स्वभाव अत्यन्त स्निग्धतापूर्ण। गांव वालों के छोटे-बड़े कामों में हाथ बँटाते। माँ की छाया बचपन में ही सिर से उठ गई। माता का प्यार भी पिता से मिलता रहा।

दादा का नाम : भाई ईशरसिंह। आप बहुत सख्त स्वभाव के बताये जाते थे।

बड़े-बुजुर्ग : 'मुसाफिर' जी भाई मणसा सिंह के खानदान में से थे, जो गृहस्थ संत के रूप में जाने जाते थे। अपने समय में हिन्दू, सिख, मुसलमान सब ही उन पर श्रद्धा रखते थे। उनके डेरे पर जरूरतमंदों के लिऐ आठों पहर लंगर चलता था। सिख राज के समय उनको काफी बड़ी जागीर मिली हुई थी।

बहन-भाई : तीन बहनें और तीन भाई थे। सबसे बड़ी बहन डॉक्टर सुरजीत सिंह सेठी की माँ थी। भाई, जसवंतसिंह, कन्हैयासिंह और ज्ञानसिंह। जसवंतसिंह छोटी आयु में ही चल बसे।

विवाह : जब 'मुसाफिर' जी पांचवीं कक्षा में पढ़ते थे, 1912 में, गोमावंती (रणजीत कौर) से उनका विवाह हुआ। वे नड़ाली, ज़िला रावलपिंडी की थीं। सरदारनी मुसाफिर 52 वर्ष के साथ के बाद 8 मार्च 1964 को स्वर्ग-सिधारीं।

बच्चे : अमृत कौर (अंबो) सबसे बड़ी बेटी का जन्म 13 अप्रैल 1920 में हुआ। इनकी शादी सरदार जोगा सिंह से हुई। 17 सितम्बर 1960 को हेम कुंड साहब की यात्रा करते हुए उनकी बस पर चट्टान खिसक कर आ गिरी और 26 यात्रियों सहित दोनों चल बसे।

जयदेवसिंह (देव) सबसे बड़े लड़के का जन्म 5 दिसम्बर 1922 को हुआ।

शेर-ओ-शायरी का शौकीन। 15 जनवरी, 1981 को हाउस्टन (अमरीका) में दिल का दौरा पड़ने से देहान्त हो गया।

भूपेन्द्रसिंह (भूपा) : दूसरे बेटे भूपेन्द्रसिंह का जन्म 1925 में हुआ। ज्ञानी जी उन दिनों राजनीतिक गतिविधियों में व्यस्त होने के कारण बच्चे के जन्म के समय स्वयं घर पर उपस्थित नहीं थे। और फिर अचानक बच्चे की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई। 'मुसाफिर' जी के घर पहुंचने तक बच्चे को मिट्टी के सुपुर्द किया जा चुका था। जिस जगह पर यह बताया गया था कि बच्चे को दफनाया गया है, पिता अपने बेटे को वहां देखने गया, बहुत छानबीन की लेकिन वह मासूम जान वहां कहीं नहीं थी। या तो ठीक जगह उन्हें नहीं बताई गई थी या उनके कलेजे का टुकड़ा किसी जंगली जानवर का भोजन बन चुका था। इस घटना का जिक्र ज्ञानी जी ने अपनी आत्मकथा में किया है।

राजिंदर कौर (जिंदर) : दूसरी बेटी का जन्म 17 जुलाई 1927 को हुआ। 'मुसाफिर' जी की जेल-यात्राओं के दौरान वह बीमार पड़ गई। फिर बीमारी बढ़ गई। आखिर 20 जून 1954 को पिता के मुंह को देखने के लिए तरसती हुई वह चल बसी।

मनदेव सिंह (मनी) : 'मुसाफिर' जी का तीसरा बेटा जिसका जन्म 12 दिसम्बर 1929 में हुआ। आजकल वाशिंगटन में, विश्व बैंक में वरिष्ठ अटारनी है।

जोगिंदर कौर (गुड्डो) : तीसरी पुत्री का जन्म 27 जून, 1933 मे हुआ। इनके पति कर्नल एस० एस० संत, सेना से अवकाश प्राप्त करके आजकल चंडीगढ़ रह रहे है।

परमदेव सिंह (पम्मी) : मुसाफिर जी के चौथे बेटे का जन्म 23 अक्तूबर, 1935 को हुआ। आजकल बम्बई में अपना निजी व्यवसाय चलाता है।

जतिंदर सिंह (छोटू) : मुसाफिर जी के पांचवें बेटे का जन्म 29 नवम्बर, 1937 को हुआ। दिल्ली में अपना निजी व्यवसाय चलाता है।

तेजिंदर देव सिंह (भीचा) : मुसाफिर जी के छोटे बेटे का जन्म 22 जुलाई 1939 को हुआ। यह बच्चा 3-4 वर्ष की आयु में अपने पिता से जेल में मिलने गया। वापस लौटते ही उसे बुखार आ गया और 21 अप्रैल 1943 को उसका देहान्त हो गया। बच्चे की बीमारी की हालत में भी पिता ने पैरोल पर आने से इन्कार कर दिया।

सचदेवसिंह (बब्बू)। जन्म 28 जून, 1942। सबसे छोटा बेटा लन्दन में अपना काम करता है।

जेल यात्राएं : 1921 से 1946 के बीच कई बार जेल गये। 1930 में

सविनय अवज्ञा आंदोलन। 1940-41 में व्यक्तिगत सत्याग्रह। 1942 में अंग्रेजों भारत छोड़ो आन्दोलन। जिन जेलों में वे रहे उनमें से कुछ इस प्रकार हैं: शाहपुर जेल, स्यालकोट जेल, रावलपिंडी जेल, मुलतान जेल, लाहौर सेंट्रल जेल।

पदवियां : जत्थेदार अकाल तख्त 1930-31 तक।
शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के सेक्रेटरी।
शिरोमणि अकाली दल के सेक्रेटरी।
सदस्य अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, पहली बार 1930 में, फिर कई बार।
सदस्य संविधान सभा 1947-50 तक।
सदस्य अस्थायी संसद 1950-52 तक।
सदस्य लोक सभा : 1952-57, 1957-62, 1962-66 में।
प्रधान, प्रदेश कांग्रेस कमेटी 1947-59 तक।
अखिल भारतीय कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य 1952-57 तक।
संसद में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्य 1952-66 तक।
चेयरमैन, जलियांवाला बाग कमेटी।
चेयरमैन, स्वागत कमेटी 61वीं इंडियन नेशनल कांग्रेस, अमृतसर।
मुख्यमंत्री, पंजाब : 1966-67 में।
सदस्य, राज्य सभा 1968-74, 1974-76 तक।

सम्मान :
1. पैपसू सरकार की ओर से 1955 में वर्ष के प्रमुख कवि के रूप में सम्मानित।
2. साहित्य अकादमी पुरस्कार 1978 (उर-वार-पार कहानी संग्रह के लिए), मरणोपरांत।
3. पद्मविभूषण (मरणोपरांत)

कुछ रचनाएं

कविता :
1. सबर दे बाण; 1922, प्रकाशक भाई गुरुदयालसिंह, अमृतसर।
2. प्रेमबाण : 1935 में लिखी गयी।
3. जीवनपंथ : 1940 : सिख पब्लिशिंग हाऊस।
4. टूटे खंभ, मार्च 1951 सिख पब्लिशिंग।
5. मुसाफरियां : अगस्त 1951, सिख पब्लिशिंग हाऊस।
6. सहिज सेती। 1964 नवयुग प्रेस, चांदनी चौक, दिल्ली।
7. बखरा-बखरा, कतरा-कतरा 1976 में।
8. दूर नेड़े 1981 में।

कहानियां : 1. बखरी दुनिया (एक अलग दुनिया) : 1945 : सिख पब्लिशिंग, हाऊस।

2. सस्ता तमाशा : 1952 में।

3. आल्हणे दे बोट (घोंसले के नवजात शिशु)।

4. कंधा बोल पईआं (दीवारें बोल उठी)। नवयुग प्रकाशन, दिल्ली।

5. उरवार, जून 1975 में।